कुरुक्षेत्र

अगस्त 199[illegible]

गांवों की तस्वीर बदलने के नए प्रयास

जवाहर रोजगार योजना के अंतर्गत हिमाचल प्रदेश के एक गांव में विद्यालय के भवन का निर्माण कार्य जारी।

"दस लाख कुओं की योजना" के तहत एक गांव में जलाशय की खुदाई का कार्य चल रहा है।

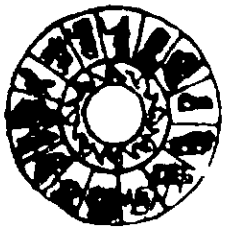

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका 'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष 40 अंक 10 श्रावण-भाद्रपद 1917, अगस्त 1995

कार्यकारी संपादक	:	बलदेव सिंह मदान
उप संपादक	:	ललिता जोशी
उप निदेशक (उत्पादन)	:	के. आर. कृष्णन
विज्ञापन प्रबंधक	:	बैजनाथ राजभर
सहायक व्यापार व्यवस्थापक	:	पी० एन० बुलकुंडे
आवरण सज्जा	:	आर. के. टंडन

एक प्रति : पांच रुपये वार्षिक चंदा : 50 रुपये

फोटो साभार : रमेश चंद्र, फोटो प्रभाग, ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय

इस अंक में

गांवों की तस्वीर बदलने के नये प्रयास	देवेन्द्र उपाध्याय	3
ग्रामीण आवास की दिशा में सरकार के प्रयास	डा. कैलाश चन्द्र पपनै	6
ग्रामीण आवास, स्वैच्छिक संगठन और स्वावलंबन	जितेन्द्र गुप्त	8
आंग सान सू ची	आशारानी व्होरा	11
सुनिश्चित रोजगार योजना : एक वरदान	एम. एल. रायपुरिया	13
ग्रामीण आवास और स्वयंसेवी संगठन	अरविन्द कुमार सिंह	15
गांवों का स्वरूप बदल रहा है	नवीन पंत	18
विकलांग (कहानी)	योगेश चन्द्र शर्मा	20
आवास समस्या एवं समाधान	डा. हरे कृष्ण सिंह	24
ग्रामीण विकास कार्यक्रम : एक मूल्यांकन	डा. अलका सिंह	27
आर्थिक विकास का माडल क्या हो?	डा. सूरज सिंह	30
ग्रामीण न्यायालयों की स्थापना	डा. संजय आचार्य	35
सीमित धरती : बढ़ते लोग	डा. रामअवतार शर्मा एवं श्रीमती सुनीता शर्मा	36
सर्वांगीण विकास हेतु महिलाओं को शिक्षा	विनय भूषण तिवारी	39
सहरिया जनजाति की आर्थिक एवं सामाजिक-स्थिति	ओ. पी. शर्मा	43

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित इस पत्रिका में शामिल लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष : 3384888

पाठकों के विचार

'कुरुक्षेत्र' का 'नई पंचायती राज व्यवस्था के दो वर्ष विशेषांक' अप्रैल 1995 पूर्णतया अभिधान वाला लगा। इसमें नई पंचायती राज व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रकाशित लेखों के माध्यम से सभी पहलुओं पर तथ्यात्मक, विश्लेषणात्मक व मूल्यांकनात्मक पर्याप्त जानकारी समाहित की गई है, जो सारगर्भित और ज्ञानवर्द्धक लगी।

नई पंचायती राज व्यवस्था का आरम्भ अपने आप में एक शुभ संकेत है। अगर 73वें संविधान संशोधन की मूल भावना को पूर्णतः ईमानदारी के साथ क्रियान्वित किया जाता है तो आशा है कि आने वाले समय में भारतीय ग्राम और ग्रामवासी एक बार फिर अपना वर्चस्व स्थापित कर सकेंगे। मौजूदा संशोधन अधिनियम के मुख्य प्रावधान के रूप में "महिलाओं, अनुसूचित जाति/जनजातियों व पिछड़े वर्गों की सहभागिता" विकेन्द्रीकरण की दिशा में एक अच्छा कदम है। परन्तु इसके साथ ही यह बात याद रखना भी जरूरी है कि बिना आर्थिक सुदृढ़ता और अधिकारों के किसी को सिर्फ कुर्सी पर बैठा कर विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए पंचायतों के लिए वित्तीय व्यवस्था करना और तुरन्त करना भी जरूरी है अन्यथा नई पंचायती राज-संस्थाएं कारगर सिद्ध नहीं हो सकेंगी। इसका रास्ता भी इसी अंक में प्रकाशित श्री ए. के. दूबे व संजय मित्रा के लेख 'पंचायती राज संस्थाओं के लिए वित्त व्यवस्था' में संकेतित है, अर्थात् 1960 और 1970 के दशकों में पंचायती राज प्रणाली की असफलता का सबसे बड़ा कारण वित्तीय साधनों की कमी थी।

नई पंचायती राज व्यवस्था के बारे में विशेष रूप से जानकारी देने हेतु डा० महीपाल, ए. के. दूबे, सुषमा, सुभाष चन्द्र "सत्य" व डा० बद्री विशाल जी को ढेरों सारा धन्यवाद। साथ में महिला साक्षरता, मधुमक्खी पालन व भारत का ग्रामीण शैक्षिक परिवेश इत्यादि लेख भी काफी रोचक लगे। यह अंक सिविल सेवा प्रधान परीक्षा हेतु प्रतियोगियों के लिए विशेष रूप से पठनीय व संग्रहणीय है।

डा० रजनी कान्त पाण्डेय,
सह-सम्पादक,
यूथ काम्पिटिशन टाइम्स/विश्व घटना दर्पण,
113, नया मम्फोर्डगंज, इलाहाबाद-211002

मैंने आपके अंक (मार्च 1995) के ज्ञानवर्द्धक एवं उपयोगी लेख पढ़े। इनमें कई लेख स्वरोजगार को प्रेरित करने वाले थे।

विशेषकर 'पाठकों के विचार' में प्रकाशित श्री अखिलेश रंजन दिल्ली का पत्र जो स्वदेशी एवं गांधीवादी माडल के संबंध में है। मैं उनके विचार से असहमत हूं। क्योंकि भारत जैसा विशाल एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर राष्ट्र कोई एक पथ का अनुगमन कर अपना विकास सुनिश्चित नहीं कर सकता है, भारत को परिस्थितिजन्य नियोजन की आवश्यकता है। इसकी पूर्ति मिश्रित औद्योगिक एवं आर्थिक ढांचा ही कर सकते हैं।

मैं समझता हूं कि भारत की आज की स्थिति के लिए कोई ढांचा या व्यवस्था जिम्मेवार नहीं है बल्कि गिरते सामाजिक मूल्यों को दोष देना चाहिए। यदि श्री रंजन ने यह भी देखा होगा कि हमारे यहां जापान के ठीक विपरीत मनोवृत्ति के लोग हैं जो सदैव अवकाश या हड़ताल से कार्य बाधित करते हैं जबकि जापान में काम के प्रति काफी उत्साह व लगन है।

'कुरुक्षेत्र' परिवार विशेष धन्यवाद का पात्र है जिन्होंने एक बड़े समूह, ग्रामीण भारत, को जागरूक करने का लक्ष्य अपनाया है। सही मायने में यहीं भारत का विकास अन्तर्निहित है।

अमरेश कुमार,
4, सोती लाईन कादिराबाद,
दरभंगा (बिहार), पिन - 846008

मैं एक ऐसी पत्रिका की तलाश में था, जिसमें पंचायती राज की तस्वीर खुली किताब की भांति दिखाई दे। बुक स्टाल में 'कुरुक्षेत्र' का 'नई पंचायत राज व्यवस्था के दो वर्ष' (अप्रैल 95) का अंक देखा और फिर मैं स्वयं को नहीं रोक सका और उसे ले लिया।

पढ़ने के बाद मैंने पाया कि यह पत्रिका वास्तव में 'कुरुक्षेत्र' ही है जिसमें मुझे पंचायती राज से संबंधित जानकारी गागर में सागर की तरह मिली।

(शेष पृष्ठ 10 पर)

ग्रामीण आवास

गांवों की तस्वीर बदलने के नये प्रयास

देवेन्द्र उपाध्याय

भारत में आज भी सत्तर प्रतिशत से अधिक आबादी गांवों में रह रही है जिनमें से करीब 48 प्रतिशत गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है। उनके लिए आवास, जल आपूर्ति, चिकित्सा सुविधा, संचार एवं आवागमन के साधनों की व्यवस्था चुनौतीपूर्ण कार्य है। स्वतंत्रता के बाद से ही ग्रामीण गरीबी को दूर करने के लगातार प्रयास हो रहे हैं। पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत के पीछे भारत के पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू का यही सपना था कि इस असंतुलन की खाई को पाटा जाए।

राष्ट्र निर्माता पं. नेहरू ने पंचायती राज व्यवस्था की जो नींव रखी, सामुदायिक विकास के माध्यम से गांवों के सर्वांगीण विकास का जो सपना देखा, 73वें संविधान संशोधन विधेयक के पारित होने के बाद उसके पूरा होने की सम्भावना बन गई है। गांवों के गरीबों की रहन-सहन की दशा बहुत शोचनीय है। अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों के अलावा आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों के लिए आवास की व्यवस्था संतोषजनक नहीं है। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना सरकार का दायित्व है। इस दायित्व के निर्वहन के लिए अनेक योजनाएं क्रियान्वित की गयी हैं। ऐसी योजनाएं शुरू की गईं जो ग्रामीण क्षेत्रों में वहां की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में मदद करने के साथ उनके लिए रोजगार और रोजगार के अतिरिक्त साधन उपलब्ध करा सकें।

ग्रामीण आवास सबसे मूलभूत समस्या है। सातवीं योजना के आरंभ में गांवों में 188 लाख मकानों की कमी थी। राष्ट्रीय ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के अंतर्गत सन् 1985-86 में इंदिरा आवास योजना शुरू की गई जिसे बाद में 1989-90 में जवाहर रोजगार योजना के अंतर्गत शामिल कर लिया गया। मकानों की समस्या बहुत ज्वलंत समस्या बनी हुई है। मकानों की समस्या को केवल एक मकान बना देने से ही हल नहीं किया जा सकता बल्कि आवास व्यवस्था ऐसी हो जिसका परिवेश भी गांवों के अनुकूल हो। स्वच्छ पेयजल की सुविधा, स्वच्छ शौचालय, उन्नत किस्म के चूल्हे, हवादार रोशनदान, गंदे पानी की निकासी के लिए नालियां और गलियां भी उसी आवास व्यवस्था का अंग हैं। इनके बिना केवल मकान का ढांचा बना देना पर्याप्त नहीं हो सकता है। उससे वह मात्र मकान ही रहेगा, घर की कल्पना साकार नहीं हो सकती है।

देश में लगभग एक लाख गांव ऐसे भी हैं जिनमें पानी की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है या एक-डेढ़ किलोमीटर क्षेत्र में पीने के लिए पानी उपलब्ध नहीं है। गांवों में भी जो मकान बने हैं उनमें मात्र 19 प्रतिशत ही पक्के हैं। इसका मतलब है कि आज भी 81 प्रतिशत मकान पक्के नहीं हैं, जिनके कारण अनेक समस्याएं पैदा होती हैं। निचले स्तर पर जीवन यापन करने वाले ग्रामीण गरीबों के लिए आवासीय सुविधा उपलब्ध होने से उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति तो होती ही है, इसके साथ ही उन्हें स्थायित्व मिलता है और सामाजिक सुरक्षा भी। आज मकान बनाने के लिए सही प्रौद्योगिकी और सही नीतियों के परिप्रेक्ष्य में आवास की बुनियादी समस्या को हल करना बहुत आवश्यक है। कम लागत में अच्छे मकान बनाने की चुनौती नीति-निर्धारकों, वैज्ञानिकों, इंजीनियरों और ग्रामीण विकास के विशेषज्ञों के सामने बनी हुई है। काफी हद तक इस चुनौती को पूरा करने के प्रयास होते रहे हैं।

जब आवास की समस्या की बात होती है तो उसके साथ ही उससे जुड़ी समस्याएं भी सामने आती हैं। सातवीं योजना के प्रारंभ में देश में 248 लाख मकानों की कमी होने का आकलन किया गया, जिनमें गांवों में 188 लाख मकानों की कमी पायी गयी। सन् 1992 में कुल 310 लाख मकानों की कमी थी जिनमें गांवों में यह कमी 220 लाख मकानों की थी। इस सदी के अंत तक गांवों में 310 लाख मकानों की कमी होने का अनुमान लगाया गया है। बढ़ती हुई आबादी के कारण मकानों की कमी की समस्या भी अन्य कई समस्याओं की तरह लगातार बढ़ती चली जाती है। अगर आबादी बढ़ने की गति इतनी तेज न हो तो उससे जुड़ी हुई अनेक समस्याओं को हल करने में भी अधिक आसानी होगी।

गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के उत्थान के लिए चलाई जाने वाली केन्द्रीय योजनाओं का काफी प्रभाव पड़ा है। जवाहर रोजगार योजना का प्राथमिक उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी और कम रोजगार प्राप्त पुरुषों तथा महिलाओं के लिए अतिरिक्त लाभकारी रोजगार पैदा करना रहा है। इससे जुड़े हुए अन्य गौण उद्देश्यों में ग्रामीण आर्थिक ढांचे को मजबूत बनाकर दीर्घकालीन रोजगार का सृजन, सामुदायिक एवं सामाजिक परिसंपत्तियों का निर्माण, ग्रामीण गरीबों के प्रत्यक्ष व निरंतर लाभ के लिए उनके पक्ष में परिसंपत्तियों का निर्माण करने, मजदूरी पर सकारात्मक प्रभाव डालने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के जीवन स्तर में व्यापक सुधार करने संबंधी महत्वपूर्ण बातें शामिल हैं। इस योजना में लक्षित समूह गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोग हैं।

जवाहर रोजगार योजना के अंतर्गत इंदिरा आवास योजना में 1989-90 से 1994-95 (सितम्बर 94) तक 49,769 भूखंडों का विकास किया गया, जिन पर 3211.34 लाख रुपये खर्च किए गए। इसी अवधि में 3,65,679 मकानों का निर्माण किया गया जिन पर 19,947.12 लाख रुपये खर्च हुए। ग्रामीण आवास के मद में 1992-93 से 1994-95 के दौरान कुल अनुमोदित परिव्यय 45 करोड़ रुपये था जबकि वर्ष 1995-96 के लिए 45 करोड़ रुपये का परिव्यय निर्धारित किया गया है।

वित्तमंत्री ने वर्ष 1995-96 के अपने बजट भाषण में इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत ग्रामीण मकानों के निर्मा की संख्या में 1994-95 के चार लाख मकानों की तुलना में 1995-96 में 10 लाख मकानों तक वृद्धि की घोषणा की। इसके लिए केन्द्र सरकार ने अपने बजट में 1,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है। इन 10 लाख इकाइयों में से कम से कम छह लाख मकानों की व्यवस्था अनुसूचित जातियों एवं जनजातीय लोगों के लिए की जायेगी।

1 जनवरी 1994 से सामान्य क्षेत्र में मकान बनाने के लिए 14 हजार रुपये देने की व्यवस्था की गयी है जबकि पहले यह राशि 12,700 रुपये थी। पर्वतीय और दुर्गम क्षेत्रों के लिए मकान बनाने के लिए सहायता राशि को 14,500 रुपये से बढ़ाकर 15,800 रुपये कर दिया गया है। वर्ष 1985-86 से 1995-96 (मार्च 95) तक 2371.86 करोड़ रुपये ग्रामीण आवास पर खर्च किये गये जिनसे 19,77,867 मकानों का निर्माण हुआ।

इन्दिरा आवास योजना के स्वरूप को और व्यापक किया जा रहा है। अब इसका लाभ आंतरिक शरणार्थियों, विकास परियोजनाओं से विस्थापित होने वालों, भूकंप पीड़ितों, विकलांगों तथा आदिवासियों व घुमन्तु जातियों के लोगों को भी मिलेगा। लाभार्थियों की सहभागिता न होने के कारण इन्दिरा आवास योजना के अंतर्गत निर्मित बहुत से मकानों में लोग रहने के लिए तैयार नहीं हैं। इसलिए यह निर्णय किया गया है कि अब भविष्य में मकान की जगह तय करने में लाभार्थियों की राय को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। यह भी तय किया गया है कि मकानों के साथ-साथ धुआं रहित चूल्हे, भंडारण के लिए जगह, मवेशियों के लिए स्थान आदि की भी व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके साथ मकानों के डिजाइनों में भी परिवर्तन की जरूरत पर भी बल दिया गया है।

लोगों की भागीदारी जरूरी

अब इन्दिरा आवास योजना के अंतर्गत ठेकेदारों द्वारा मकान बनाये जाने पर पाबंदी लगायी जा रही है। इससे ग्रामीणों के रोजगार के अवसर और बढ़ेंगे तथा बिचौलियों के शोषण से भी मुक्ति मिलेगी। इस योजना के अंतर्गत ठेकेदार से मकान बनाये जाने की जानकारी मिलने पर केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकार को आबंटित धनराशि वापस ली जा सकती है। इन नये परिवर्तनों का मुख्य उद्देश्य लाभार्थियों को अधिकतम लाभ पहुंचाना है जिससे कि निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

वास्तव में लाभार्थियों को अपनी इच्छानुसार मकान बनाने की छूट मिलनी चाहिए। इससे मकानों की लागत तो कम होगी ही, उनकी गुणवत्ता भी बेहतर हो सकती है। अगर मूलभूत सुविधाओं की व्यवस्था नहीं की जाती तो फिर ऐसे मकान बनाने के उद्देश्य में सफलता नहीं मिल सकती है। मकान बनाने के पीछे हर व्यक्ति का अपना एक सपना होता है— केवल मकान का ढांचा उसके लिए घर नहीं हो सकता। मकान ऐसा होना चाहिए जो घर बन सके। अब सरकार ने इस वास्तविकता को देखते हुए ही योजना के स्वरूप को न केवल व्यापक बनाया है बल्कि उसके साथ लाभार्थियों की अपनी इच्छा का भी समावेश करने का निर्णय लिया है। थोपी गयी योजनाएं कभी कारगर नहीं हो सकतीं और न ऐसी योजनाएं निर्धारित लक्ष्य का सफलतापूर्वक निष्पादन कर सकती हैं। इसलिए जिन लोगों के लिए योजनाएं बनायी जाती

हैं उनकी सहभागिता होना बहुत जरूरी है। हर क्षेत्र की अपनी-अपनी भौगोलिक संरचना होती है। इसलिए उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थिति को भी ध्यान में रखा जाना बहुत जरूरी है।

पहाड़ी क्षेत्रों में हवा, आंधी और तेज वर्षा से बचाव में सक्षम प्रौद्योगिकी अपनायी जानी चाहिए, ऐसी प्रौद्योगिकी मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं हो सकती है। ऐसी स्थिति में भौगोलिक संरचना के आधार पर उसके अनुकूल प्रौद्योगिकी अपनाये जाने की जरूरत है, तभी लक्ष्य को प्राप्त करने में सफलता मिल सकती है। ऐसा न होने के कारण आबंटित की गयी धनराशि का सही उपयोग नहीं हो पाता है।

आवास यों तो राज्यों का विषय है। राज्यों द्वारा योजना और गैर-योजना मदों में संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर आवास योजनाएं संचालित की जा रही हैं। केंद्र सरकार द्वारा जवाहर रोजगार योजना के अंतर्गत इंदिरा आवास योजना तथा कमजोर वर्गों और गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों के लिए मकानों के निर्माण हेतु केन्द्रीय सहायता अनुदान राज्यों को दिया जाता है।

खामियां दूर की गई

अक्टूबर 1971 में भूमिहीन कृषि मजदूरों के लिए निःशुल्क आवास स्थल उपलब्ध कराने के लिए केन्द्रीय क्षेत्र में आवास स्थलों के आबंटन की योजना प्रारंभ की गयी थी। बाद में अप्रैल 1974 से इस योजना को राज्य क्षेत्र को स्थानान्तरित किया गया और साथ ही इसे न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम में शामिल कर दिया गया। बाद में इसे 20 सूत्री कार्यक्रम के सूत्र 14 के रूप में मान्यता दी गयी। प्रारंभ में स्थल विकास की लागत के लिए 500 रुपये तथा निर्माण सहायता के लिए दो हजार रुपये दिये जाने का प्रावधान था। बाद में इस राशि को आवश्यकतानुसार बढ़ाया जाता रहा है। स्थानीय तौर पर उपलब्ध उपयोगी सामग्री, डिजाइन और प्रौद्योगिकी को भी प्रोत्साहन दिया जाता है। ठेकेदारी प्रथा के चलते अनेक खामियां भी इन मकानों के निर्माण में सामने आईं, जिसके कारण अन्य कई ग्रामीण विकास योजनाओं की तरह ठेकेदारी व्यवस्था से इसे भी पूरी तरह मुक्त रखने का निर्णय लिया जा रहा है। ठेकेदारी प्रथा के चलते पूरी राशि का समुचित उपयोग नहीं हो पाता है और लाभार्थी उस योजना का पूरा लाभ नहीं उठा पाते हैं, जो उनके अपने कल्याण के लिए बनायी गयी हैं। इन तमाम खामियों को दूर करने से ही योजना का सफलतापूर्वक कार्यान्वयन किया जा सकता है।

राष्ट्रीय आवास नीति में उपायों की परिकल्पना

राष्ट्रीय आवास नीति में इस बात को स्वीकार किया गया है कि ग्रामीण आवास शहरी आवास से गुणात्मक रूप में भिन्न है। ग्रामीण क्षेत्रों में आवास गतिविधि नकद अर्थव्यवस्था पर उतनी आधारित नहीं है जितनी भूमि के आधार तथा संसाधनों की पैठ पर आधारित है। इसके अलावा वित्त, भवन सामग्री, प्रौद्योगिकी विशेषता और आधारभूत ढांचे के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त रूप से संस्थागत विकास नहीं हुआ है।

राष्ट्रीय आवास नीति में ग्रामीण आवास के बारे में दो केन्द्रीय उपायों की परिकल्पना की गयी है जिनमें पहली परिकल्पना है विभिन्न जलवायु क्षेत्रों के अनुकूल प्रौद्योगिकियों तथा स्थानीय भवन सामग्री के इस्तेमाल को प्रोत्साहन देना और ऐसी सामग्रियों के अंधाधुंध और वाणिज्यिक इस्तेमाल को रोकना। दूसरी परिकल्पना है, आवास संबंधी अधिकार देने और न्यूनतम आधारभूत ढांचे के साथ आवास स्थलों की व्यवस्था करने के लिए कानून बनाकर तथा उन्हें प्रभावी ढंग से कार्यान्वित करके मुख्यतः अपनी मदद से मकानों का निर्माण करने हेतु समुचित वातावरण तैयार करना जिसमें ग्रामीण लोगों द्वारा नये मकानों का निर्माण, विस्तार तथा सुधार करना भी शामिल है।

नई पंचायती राज प्रणाली ने ग्रामीण क्षेत्र के विकास को एक नई दृष्टि दी है। इसमें क्षेत्रीय/ग्रामीण विकास में स्थानीय लोगों की भागीदारी को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गयी है। इससे अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप योजनाओं के सही ढंग से क्रियान्वयन करने में स्थानीय लोगों की भागीदारी से बेहतर और कोई उपाय नहीं हो सकता है। ग्रामीण आवास की समस्या को बेहतर ढंग से हल करने से गांवों की तस्वीर को बदला जा सकता है और इस तस्वीर को बदलने से ही गांवों का समग्र विकास संभव हो सकेगा।

सी-7/18 ए, लारेंस रोड,
दिल्ली-110035

ग्रामीण आवास की दिशा में सरकार के प्रयास

डा. कैलाश चन्द्र पपनै

आवास एक मूलभूत आवश्यकता है। अच्छा व उन्नत श्रेणी का आवास जीवन-स्तर में सुधार का सूचक है। यह देश और समाज में प्रगति का भी स्पष्ट संकेत देता है। लेकिन शहरी गंदी बस्तियों में रहने वाले या गांवों में फूस के छप्पर के नीचे जीवन बसर करने वाले गरीबों के आवास स्तर में सुधार की बहुत गुंजाइश है। इसके अलावा बड़ी संख्या में ऐसे बेघर लोग हैं जिन्हें सिर के ऊपर छप्पर भी नहीं मिल पाता है।

इस बात में संदेह नहीं है कि देश में आर्थिक प्रगति के साथ आवास सुविधाओं में भी सुधार हुआ है। परन्तु जनसंख्या वृद्धि और परिवारों के बिखराव से आवास की कमी उभर कर आई है। जनसंख्या आंकड़ों के एक विश्लेषण के अनुसार शहरों में अपने मकान बना पाने वालों की तादाद बढ़ी है। इस अध्ययन के अनुसार 1961 में शहरों में अपने ही स्वामित्व वाले मकानों की संख्या 46 प्रतिशत थी जो 1991 तक बढ़कर 63 प्रतिशत हो गई। परन्तु गांवों में अपने स्वामित्व वाले मकानों की संख्या तीस वर्षों के अन्तराल के बाद भी 95 प्रतिशत ही बनी रही। ग्रामीण अंचल में मुख्य समस्या मकानों के कच्चे या सिर्फ काम चलाऊ होने की है। इस अध्ययन के अनुसार गांवों में कच्ची दीवार वाले मकानों की संख्या वर्ष 1961 में 78.5 प्रतिशत थी जो तीस वर्षों बाद घटते-घटते भी 61 प्रतिशत के ऊंचे आंकड़े पर टिकी हुई है। जाहिर है कि ग्रामीण आवास समस्या की तरफ ध्यान देते समय मकानों की कमी ही नहीं वरन् उपलब्ध मकानों की गुणवत्ता पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय भवन संगठन के सर्वेक्षण के अनुसार वर्ष 1991 में देश में मकानों की कुल कमी 3.1 करोड़ की थी जिसमें से 2 करोड़ से अधिक की कमी ग्रामीण क्षेत्रों में थी। अनुमान है कि सन् 2001 तक देश में मकानों की कुल कमी बढ़कर 4.1 करोड़ तक पहुंच जाएगी जिसमें से ग्रामीण अंचल का अभाव 2.5 करोड़ से अधिक का होगा।

पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान आवास क्षेत्र में निवेश बढ़ा अवश्य है परन्तु कुल निवेश की तुलना में आवास क्षेत्र में निवेश का अनुपात भी प्रायः गिरता गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक और संगठित वित्तीय क्षेत्र द्वारा आवास योजनाओं पर 250 करोड़ रुपये खर्च किये गए और निजी क्षेत्र द्वारा 900 करोड़ रुपये का निवेश किया गया। सातवीं योजना तक सार्वजनिक क्षेत्र का निवेश 2,458 करोड़ रुपये तथा निजी क्षेत्र का निवेश 29,000 करोड़ रुपये तक जा पहुंचा। परन्तु इसी अवधि में आवास क्षेत्र में निवेश कुल निवेश के 34 प्रतिशत की तुलना में घटकर सिर्फ 9 प्रतिशत तक जा पहुंचा।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण भूमिहीनों, श्रमिकों व दस्तकारों के लिए आवास योजनाओं पर विशेष ध्यान दिया गया। वास्तव में केन्द्रीय क्षेत्र में भूमिहीन ग्रामीण कृषकों को निःशुल्क आवास स्थल प्रदान करने की योजना अक्तूबर 1971 में शुरू की गई थी। वित्तीय वर्ष 1974-75 के प्रारम्भ में यह योजना राज्यों को हस्तांतरित कर दी गई। इसके बाद इसे 20 सूत्री कार्यक्रम का अनिवार्य अंग बना दिया गया। बाद में योजना के क्षेत्र का विस्तार करते हुए भूमिहीन ग्रामीण दस्तकारों को भी इसके दायरे में शामिल कर लिया गया। आवास स्थल के विकास में 500 रुपये तथा निर्माण सहायता के रूप में 2000 रुपये का प्रावधान रखा गया।

सातवीं योजना के अन्तर्गत संस्थागत वित्तीय सुविधा तथा भवन निर्माण तकनीक के विकास को भी वांछित प्राथमिकता प्रदान की गई। कुल 2458 करोड़ रुपये की योजना में से केन्द्रीय क्षेत्र में सिर्फ 256 करोड़ रुपये की राशि निर्धारित थी। यह सार्वजनिक क्षेत्र को आबंटित योजना राशि का सिर्फ 1.1 प्रतिशत थी। दिलचस्प बात यह है कि 256 करोड़ रुपये की आबंटित राशि में से भी सिर्फ 175.38 करोड़ रुपये की राशि खर्च की गई।

बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण भूमिहीन कामगारों के लिए आवास स्थलों की व्यवस्था और आबंटित आवास स्थलों पर निर्माण सहायता देने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की गई। छठी योजना तक कुल 131 लाख परिवारों को आवास स्थल आबंटित किये गए थे तथा 28 लाख परिवारों को निर्माण सहायता सुलभ करवाई गई थी, परन्तु सातवीं योजना की अवधि में (वर्ष 85-90) 43 लाख परिवारों को आवास भूमि आवंटित की गई तथा

2.55 लाख परिवारों को निर्माण सहायता दी गई।

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय ने ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण आवास की योजना इन्दिरा आवास योजना चलाई। शत प्रतिशत अनुदान पर आधारित यह योजना बाद में जवाहर रोजगार योजना के अंग के रूप में चलाई गई। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा मुक्त बंधुआ मजदूरों को आवास व कार्यस्थल के रूप में उपयोगी स्थान देने की दृष्टि से बनाई गई इस योजना के अन्तर्गत मैदानी क्षेत्रों में 12,700 रुपये तथा पर्वतीय क्षेत्रों के लिए 14,500 रुपये प्रति इकाई अनुदान का प्रावधान था। यह अनुदान राज्य सरकारों को आवास निर्माण व सम्बद्ध सुविधाओं के विकास के लिए दिया जाता है। इस योजना के अन्तर्गत सातवीं योजना अवधि में 699.58 करोड़ रुपये व्यय करके 6.87 लाख आवास इकाइयों का निर्माण किया गया। इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत 12,700 रुपये की अनुदान राशि को 1 जनवरी, 1994 से बढ़ाकर 14,000 रुपये कर दिया गया। इसमें से मकान निर्माण के लिए 9,000 रुपये, स्वच्छ शौचालय व धुएं रहित चूल्हे के निर्माण के लिए 1,500 रुपये का तथा बुनियादी ढांचे व सामान्य सुविधाओं के लिए 3,500 रुपये का प्रावधान रखा गया। पर्वतीय क्षेत्रों सहित दुर्गम इलाकों में मकान निर्माण की लागत 10,800 रुपये तक हो सकती है। इसके अलावा आवश्यकतानुसार बुनियादी ढांचे के लिए आबंटित 3,500 रुपये की राशि को भी मकान पर खर्च किया जा सकता है। गरीबी रेखा के नीचे स्तर पर जीवन यापन करने वाले लोगों के लाभार्थ इस योजना में गैर अनुसूचित जातियों व आदिवासी गरीबों को भी शामिल कर लिया गया है। मार्च 1994 तक इस योजना के अन्तर्गत 2300 करोड़ रुपये के व्यय से 19.2 लाख मकान बनाये जा चुके थे। वर्ष 1995-96 के बजट में इंदिरा आवास योजना के अन्तर्गत 10 लाख आवास निर्माण के लिए 1000 करोड़ रुपये आबंटित किए गए हैं। इसमें राज्यों को भी बराबरी के आधार पर वित्तीय भागीदारी निभानी होगी।

ऊंचे लक्ष्य पर्याप्त नहीं हैं। उन पर अमल सुनिश्चित करना व निगरानी रखने की भी गम्भीर आवश्यकता है। शहरी एवं ग्रामीण विकास से सम्बद्ध संसदीय स्थायी समिति अपनी एक रिपोर्ट में इस बात पर चिन्ता जाहिर कर चुकी है कि आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत आबंटित धनराशि में से सिर्फ 39 प्रतिशत ही खर्च के लिए जारी की गई है। इस मामूली राशि को भी ठीक से ख़र्च न किया जाना और भी चिन्ताजनक है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना की तुलना में आठवीं पंचवर्षीय योजना की एक अत्यंत उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसे एक सुनिश्चित राष्ट्रीय आवास नीति की पृष्ठभूमि में लागू किया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय ने इस योजना के अन्तर्गत आवास स्तर सुधार की राज्य सरकारों की योजना में सहायता के लिए ग्रामीण आवास की एक नई योजना भी बनाई। ग्रामीण आवास की केन्द्र प्रायोजित योजनाओं के लिए 350 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया है। कुल 6377 करोड़ रुपये की आवास योजना में से ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय के लिए 1454 करोड़ रुपये तथा इंदिरा आवास योजना के लिए 1104 करोड़ रुपये रखे गए। योजना अवधि के भौतिक लक्ष्यों का निर्धारण करते समय गांवों में 81.5 लाख नए मकान बनाने, 40.7 लाख आवास स्थलों में सुधार तथा न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत 40 लाख आवास खंड आबंटित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए नई योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्र में 68 लाख नए मकान बनाने का लक्ष्य है। नए मकान बनाने में औपचारिक वित्तीय संसाधनों की मदद से गांवों में 35 लाख मकान बनाने का लक्ष्य रखा गया। जिलों में 250 विनिर्मित केन्द्रों के गठन का लक्ष्य रखा गया जहां कारीगरों को नई आवास तकनीकों व उपयुक्त भवन सामग्री के इस्तेमाल का प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

योजना के अन्तर्गत ग्रामीण आवास के क्षेत्र में आवास एवं शहरी विकास निगम (हुडको) से सहयोग लेने का प्रबंध भी है। इसी तरह से लोक कार्यक्रम तथा ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद (कापार्ट) भी स्वयंसेवी संस्थाओं व ग्रामीणों को तकनीकी एवं वित्तीय मदद दे रहा है। ग्रामीण आवास के क्षेत्र में कापार्ट अब तक 21 करोड़ रुपये खर्च कर चुका है। कापार्ट ने जन सहयोग लेकर ग्रामीण आवास का नया कार्यक्रम भी शुरू किया है। कापार्ट व हुडको के बीच भी तालमेल व सहयोग से ग्रामीण आवास के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान की संभावनाएं हैं।

उन्नत आवास की जरूरत उन ग्रामीणों के लिए ज्यादा है जो साधनों की कमी के कारण गंदगी में रहने को बाध्य हैं। ग्रामीण क्षेत्र में आवास गतिविधि भूमि की उपलब्धता व संसाधनों तक पहुंच पर अधिक निर्भर है और नकद अर्थ सहायता पर कम आश्रित है। फिर भी आवासीय ऋण सुविधा का जो तंत्र शहरों व महानगरों में सुलभ है उसका दायरा ग्रामीण आवास तक बढ़ाना आवश्यक है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि गांवों में आधारभूत सुविधाएं दे दी जाएं तो शहरों पर उनकी निर्भरता को कम किया जा सकता है।

सी-2, प्रेस अपार्टमेन्ट्स,
23, पटपड़गंज,
दिल्ली-110092

ग्रामीण आवास, स्वैच्छिक संगठन और स्वावलंबन

जितेन्द्र गुप्त

साधन संपन्न अपनी सामर्थ्य के अनुसार सुख-सुविधा के साधन जमा करने की होड़ में जुटे रहते हैं। दूसरी ओर आबादी का एक-तिहाई भाग गरीबी की रेखा के नीचे गुजर बसर करता है। ये लोग रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी आवश्यकताएं भी पूरी नहीं कर पाते। अगर रोजगार के पर्याप्त अवसर पैदा किए जा सकते तो ये लोग भी ज्यादा नहीं तो बुनियादी सुविधाओं से वंचित न रहते। व्यक्ति के पास पूरे समय का रोजगार हो तो वह रोटी और कपड़े का इंतजाम कर ही लेता है। मकान का मामला अवश्य कुछ टेढ़ा है क्योंकि उसके लिए जमीन ही नहीं, इमारती सामान की भी दरकार होती है। इनके लिए पूंजी चाहिए। पूरे समय का रोजगार न हो तो घर की मरम्मत और रख रखाव भी दूभर हो जाता है।

सात पंचवर्षीय योजनाओं, हरित क्रांति और आर्थिक विकास के नाम पर किए गए तमाम प्रयासों के बावजूद हमारे गांव दरिद्रता के दलदल में फंसे हुए हैं। लोकतंत्री सरकार का कर्त्तव्य है कि वह अनुकूल आर्थिक नीतियां अपनाए। इसलिए ग्राम विकास और आवास की कई योजनाएं बनाई गई हैं।

सातवीं योजना के आरंभ में अनुमान था कि देश में दो करोड़ 48 लाख घरों की कमी है। शहरों के मुकाबले गांवों में घरों की कमी का अनुपात एक और तीन का था। गांवों में एक करोड़ 88 लाख घरों की कमी थी। सन् 1990 में कमी का अनुपात 1 : 3 की जगह 1 : 2 का रह गया था। गांवों में घर बनाने की कोशिशों के बावजूद आबादी में वृद्धि और अन्य कारणों से अनुमान है कि सन् 2000 तक शहर और गांव में घरों की कमी का अनुपात फिर 1 : 3 का हो जाएगा।

केन्द्र और राज्य सरकारें गांवों में घर बनाने-बनवाने की कई योजनाएं चला रही हैं। घर के साथ जल की निकासी, जल की आपूर्ति, सफाई, रास्तों, प्रकाश आदि की भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। ये काम स्वतंत्र रूप से भी होना चाहिए। इसलिए जब एक ही जगह बहुत से मकान बनने हों तो उसका खास तौर से ध्यान रखा जाता है।

भारत सरकार का ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय इंदिरा आवास योजना और ग्रामीण आवास योजना के अधीन राज्यों को आर्थिक दृष्टि से पिछड़े और गरीबी रेखा से नीचे वालों के लिए घर बनाने की स्कीमों के लिए वित्तीय साधन मुहैया कराता है। पिछले वित्त वर्ष में यानी 1994-95 में इंदिरा आवास योजना में गांवों में चार लाख घर बनाने का लक्ष्य रखा गया था। तीन चौथाई बने चुके हैं और शेष बन रहे हैं।

चालू वित्त वर्ष में इंदिरा आवास योजना के अधीन दस लाख घर बनवाने का लक्ष्य रखा गया है। इस काम के लिए बजट में दस अरब रुपये रखे गए हैं। यह लक्ष्य पूरा करना राज्य के सरकारी विभागों द्वारा संभव नहीं है। विकास कार्यों को अंजाम देने में सरकारी अमला बहुत कारगर नहीं रहा है। विभागीय तालमेल में कमी के अलावा दूसरे कारण भी रुकावट बनते रहे हैं।

अगर पंचायती राज व्यवस्था को समुचित अधिकार और साधन दिए गए होते और जनता के प्रतिनिधि स्थानीय समस्याओं को निपटाने में लगे होते तो जन-सहयोग के रास्ते खुल गए होते। पंचायतों को सबल कानूनी अधिकार और जिम्मेदारी सौंपने का काम पिछले साल ही पूरा हुआ है। इस तंत्र को गतिशील होने में कुछ समय लगेगा।

सरकार और ग्रामीण जनता के बीच सेतु का काम करने के लिए इस बीच कई स्वैच्छिक संगठन सामने आए हैं। अपनी खामियों और सीमाओं के बावजूद तमाम स्वैच्छिक संगठन जनता को संगठित करने का काम सफलतापूर्वक कर रहे हैं। ग्राम विकास और गांवों के अनुकूल प्रौद्योगिकी के प्रसार में जुटे स्वैच्छिक संगठनों को वित्तीय सहायता देने के लिए भारत सरकार ने सोसायटीज अधिनियम के तहत एक सोसायटी बनाई है। नाम है काउंसिल फार एडवांसमेंट आफ पीपुल्स एक्शन एंड रूरल टेक्नोलाजी यानी कापार्ट। यह संगठन गांवों में घर बनाने के लिए

स्वैच्छिक संगठनों को वित्त मुहैया कराता है।

यह काम कापार्ट कई वर्षों से कर रहा है। 1985 से अब तक वह स्वैच्छिक संगठनों को 23,000 घर बनाने के लिए 21 करोड़ रुपये मंजूर कर चुका है।

चालू वित्त वर्ष में कापार्ट को स्वैच्छिक संगठनों के जरिए 30,000 घर बनवाने हैं। इस काम के लिए 580 संगठन स्वीकृत सूची पर हैं। वित्तीय साधन उन्हीं संगठनों को मुहैया कराए जाएंगे जो निश्चित अवधि के भीतर घर बनवाने में सक्षम होंगे। उनका चयन क्षेत्रीय सम्मेलनों में किया जाएगा।

कापार्ट से अनुदान पाने वाले संगठनों को सबसे पहले सर्वेक्षण करके यह पता लगाना होता है कि जरूरतमंद ग्रामीण के पास घर बनाने के लिए कम से कम 20-25 वर्ग मीटर जगह है या नहीं। भूस्वामित्व के प्रमाणपत्र के साथ संगठन घर की लागत का तखमीना भी कापार्ट को भेजता है। जाहिर है कि स्थानीय भौगोलिक परिवेश के अनुसार कम से कम खर्च से बनने वाले घर का तखमीना बनाया जाता है जो अधिक से अधिक 14-15 हजार रुपये के आसपास होता है। प्रत्येक घर के लिए 75 प्रतिशत या अधिक से अधिक 11,300 रुपये अनुदान के रूप में दिए जाते हैं। ग्रामीण को अपने हिस्से की एक चौथाई रकम श्रम के रूप में चुकानी पड़ती है। वह नींव खोदता और दूसरे काम करता है।

स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री से ही घर बनाना होता है। घर से बाहर शौचालय बनाने के लिए भी दो हजार रुपये अनुदान दिया जाता है और धुआं रहित चूल्हे के लिए सौ रुपये भी। अगर अनेक घर एक साथ बनते हैं तो हैंडपंप, रास्तों और जल निकासी की व्यवस्था के लिए प्रति आवास के लिए 3,300 रुपये के हिसाब से अतिरिक्त अनुदान दिया जाता है। बायो गैस संयंत्र भी लगाए जाते हैं।

इस प्रकार कापार्ट और स्वैच्छिक संगठनों की मार्फत केवल उन ग्रामीणों को मकान बनाने के लिए नकद वित्तीय सहायता दी जाती है जिनके पास अपनी जमीन है।

आवास और शहरी विकास निगम (हुडको) भी सरकार द्वारा स्थापित निगम है जो शहरों और 1977-78 से गांवों की आवास परियोजनाओं के लिए ऋण मुहैया करता है। तेईस वर्ष के अपने जीवन-काल में वह सस्ते मकानों के डिजाइन और सस्ती भवन निर्माण-सामग्री के प्रचार-प्रसार का सशक्त और कारगर केंद्र बन गया है। उसे गांवों में आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों की आवास योजनाओं की भी जिम्मेदारी सौंपी गई है। वह राज्यों और राज्य संगठनों को कर्ज देता है। उसकी सहायता से 21 राज्यों के हजारों गांवों में 28.5 लाख घर बने हैं। उन पर 21.5 अरब रुपये की लागत आई है जिसमें से हुडको ने 11.65 करोड़ रुपये कर्ज के रूप में दिए हैं।

राज्यों के स्तर पर पिछड़े वर्गों को घर बनाने के लिए जमीन दिलाने की योजना भी लंबे समय से चली आ रही है। 1993-94 के अंत तक 2.12 करोड़ परिवारों को घर बनाने के लिए जमीन दिलाई जा चुकी थी। इन पर घर बनाने के लिए 70 लाख से भी अधिक लोगों को वित्तीय सहायता दी जा चुकी है।

गांवों की आवास समस्या के मुकाबले अपनाए गए उपाय बौने साबित हुए हैं। न केवल समस्या बड़ी है, बल्कि पेचीदा भी हुई है। दूर-दूर बिखरे गांव, गरीब और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े लोग। इन सब तक सुविधाएं और वित्तीय साधन पहुंचाने का कोई कारगर तंत्र विकसित नहीं हुआ है। स्थानीय सहयोग के बिना और जिनके लिए योजनाएं बनाई जाती हैं उनमें आत्म-सम्मान जगाए बिना ठोस और स्थायी प्रगति दुश्वार बनी रहेगी।

सरकारी योजनाएं धन अनुदान देने की भावना से चलाई जाती हैं। सरकारी कर्मचारी भी यही समझते हैं कि गांववासियों पर अहसान किया जा रहा है। गांव वालों की निगाह में विकास या सरकारी योजना का अर्थ है कि पैसा मिलेगा, जिसे वापस करना जरूरी नहीं है। क्योंकि किसी भी गांव के हिस्से में थोड़ी ही रकम आती है, इसलिए जमीन और मकान अनुदान पाने की आपाधापी मच जाती है। बहुधा सही चुनाव नहीं होता। जिस योजना में अनुदान की जगह कर्ज मिलता है वहां भी प्रवृत्ति यही रहती है कि पैसा वापस न किया जाए। कुछ स्वैच्छिक संगठनों का कहना है कि गांवों में दोहरी नीति नहीं चल सकती। इसलिए सब्सिडी के मसले पर पुनर्विचार होना चाहिए।

इस वर्ष मई के आखिरी हफ्ते में कापार्ट ने स्वैच्छिक संगठनों का सम्मेलन बुलाया था, जिसमें सब्सिडी के अलावा इमारती लकड़ी और घर बनाने की पारंपरिक सामग्री जैसे बांस आदि की तंगी का सवाल उठाया। पहले ये चीज़ें गांवों में प्रचुरता से मिल जाती थीं, पर अब जंगलों के कटने, पंचायती जमीन का क्षेत्रफल

घटने और स्थानीय साधनों का उपयोग करने वाले उद्योगों के खुलने से ये चीजें दुर्लभ होती जा रही हैं। बहुत जगह तालाब नहीं रहे, अतः दीवाल उठाने के लिए पानी मिलना कठिन हो गया है।

स्वैच्छिक संगठनों के एक वर्ग का आग्रह था कि खेती की जमीन पर घर बनाने की इजाजत न दी जाए बल्कि बंजर और दूसरी जमीन का उपयोग हो। एक सुझाव यह भी था कि घुमंतू जातियों को बसाने, परियोजनाओं के विस्थापितों के पुनर्वास और दलितों के लिए आवास को प्राथमिकता दी जाए।

घरों की लागत कम से कम रखने के लिए पारंपरिक वस्तुओं या वैकल्पिक सामग्री के बारे में कई संगठनों ने काफी काम किया है। मिट्टी की कच्ची ईंटों या मिट्टी के ही कच्चे मकानों को मजबूती देने की भी कई विधियां निकाली गई हैं। इनका उपयोग हो रहा है, मगर लकड़ी के विकल्प हर जगह आसानी से उपलब्ध नहीं और आसानी से लोग उन्हें अपनाते भी नहीं।

साल में कुल जितने मकान और घर बनते हैं उनमें सरकारी आवास योजनाओं की हिस्सेदारी केवल पांच प्रतिशत है। इसलिए दूसरे उपाय अपना कर सरकार मौजूदा खर्च से ही कई गुना अधिक घर बनवाने का रास्ता खोल सकती है। एक तरीका यह हो सकता है कि गांव वालों को सहकारी समितियां बनाने के लिए प्रेरित किया जाए। उन्हें जमीन दिलाने में पंचायतें और राजस्व विभाग के लोग मदद करें। घर बनाने के लिए कर्ज दिए जाएं और वसूली भी की जाए। सरकार समिति को जमीन दिलाने, उसे विकसित करने और भूमि के समुचित बंटवारे में सहायक बने अथवा इस काम में स्वैच्छिक संगठनों की मदद ली जाए।

ग्रामीण आवास योजनाएं तभी सफल होंगी जब पिछड़े वर्गों को अपने पांव पर खड़े होने का अवसर मिलेगा। ग्रामीण उद्योग धंधों के लिए अनुदान की जगह संस्थाओं द्वारा ऋण दिलाने का प्रबंध हो। अनुदान उन्हें दूसरों पर निर्भर बनाते हैं और भ्रष्टाचार भी फैलता है। उनके खुद के संगठन बनाने और चलाने में मदद से बढ़कर कोई और मदद नहीं हो सकता है।

बी. 9, प्रेस एनक्लेव,
साकेत, नई दिल्ली

पाठकों के विचार...

(पृष्ठ 2 का शेष)

गजानन शर्मा द्वारा लिखित कहानी 'विधाता' अच्छी लगी। मजदूर अपनी सारी जिन्दगी मेहनत करता है और दुनिया के लिए महल अट्टारी ऐशो आराम की वस्तुएं बनाता है, पर वह खुद फटे-हाल जीवन व्यतीत करता है और भाग्य भी उसे दर-दर भटकने के लिए मजबूर करता रहता है।

राजेश गोहिया (राज),
लोनिया करबल,
जिला - छिन्दवाड़ा (म. प्र.)

आपके द्वारा भेजी मार्च 1995 का 'कुरुक्षेत्र' पत्रिका प्राप्त हुई।

मैंने मधुमक्खी के बारे में उमेश प्रसाद सिंह का लेख पढ़ा। "अपने खेत खलिहानों में मधुमक्खी पालिए" से मार्गदर्शन तो मिला पर अपने यहां के खादी ग्रामोद्योग से कोई सहयोग नहीं मिल पा रहा है। हमारे यहां मधुमक्खी पालन के लिए जगह अनुकूल है और यह एक नया रोजगार है जो युवाओं को प्रोत्साहित करेगा। किसान तो लाभान्वित होंगे ही।

"ग्रामीण सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के उपाय" और "राष्ट्रीय एकता में महिलाओं की भूमिका" लेख से आम आदमी में एक नई उत्सुकता और चेतना जागृत होगी जो राष्ट्रीयता एवं की संस्कृति सुरक्षा के लिए सहायक सिद्ध होगी। काश आपकी पत्रिका गांवों में पहुंच पाती तो परिवर्तन निश्चित था। महिला साक्षरता तो बढ़ी है पर उतनी नहीं जितना सरकार और संस्थाएं दावा करती हैं।

दूध में रसायनों की मिलावट स्वास्थ्य के लिए ही घातक नहीं है वरन् राष्ट्र के हित में हानिकारक है। राष्ट्र के कर्णधार जिन बच्चों को कहा जाता है अगर उन्हें स्वच्छ दूध भी हमारा समाज उपलब्ध नहीं करा सका तो राष्ट्र की क्या स्थिति होगी कल्पना करना मुश्किल नहीं है। "बच्चों के अंधापन : कारण एवं निवारण" एक ज्ञानवर्द्धक एवं स्वास्थ्यपरक लेख है।

विमला रस्तोगी अपनी कहानी "जवाब अधूरे हैं" के द्वारा महिलाओं को एक नई चीज बता गई हैं। इसे पढ़ी-लिखी एवं नवसाक्षर महिला [illegible] पाएंगी ऐसी हम आशा करते हैं। विमला जी धन्यवाद की पात्र हैं।

बिपिन कुमार,
वार्ड नं०-2, लहेरिया गंज,
मधुबनी-847211।

जीवंत संघर्ष-प्रतीक

आंग सान सू ची

आशारानी व्होरा

10 जुलाई, 1995। एक लंबी प्रतीक्षा के बाद म्यांमार (बर्मा) की जुझारू नेता आंग सान सू ची अंततः बिना शर्त रिहा कर दी गईं। कुछ ही दिनों बाद 20 जुलाई को उनकी घर में नजरबंदी को छः वर्ष पूरे होने वाले थे कि उन पर लगे प्रतिबंध उठाकर उन्हें सामान्य नागरिक की तरह कहीं भी आने-जाने व किसी से भी मिलने की छूट दे दी गई। भारत सहित समूचे विश्व ने सू ची की रिहाई का स्वागत किया और आशा व्यक्त की कि इससे म्यांमार में राष्ट्रीय सहमति, लोकतंत्र और स्वतंत्रता का युग शुरू होगा।

8 मई, 1995। म्यांमार की एक जुझारू महिला आंग सान सू ची को 1993 के 'जवाहर लाल नेहरू अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना पुरस्कार' से सम्मानित किए जाने की घोषणा एक सुखद अहसास दे गई। लगा, निर्णायक मंडल ने एक सही निर्णय लेकर स्वतंत्रता और लोकतंत्र के लिए अहिंसक संघर्ष को तो बल पहुंचाया ही, भारत द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना के लिए स्थापित इस सर्वोच्च पुरस्कार को भी सार्थकता प्रदान की।

इसके पूर्व आंग सान सू ची को 'नोबेल शांति पुरस्कार' से सम्मानित किया जा चुका है, जिसे लेने दिसंबर, 1991 में वह स्वयं नहीं जा सकी थीं, क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ और विभिन्न देशों की सरकारों की मांग के बावजूद, म्यांमार की सैनिक सरकार ने सू ची को रिहा नहीं किया था और उनसे सम्पर्क करने के सारे प्रयास विफल कर दिए गए थे। उनके पति माइकल ऐरिस और उनके ज्येष्ठ पुत्र एलेक्जेंडर ने उनकी ओर से ओस्लो जाकर नोबेल पुरस्कार ग्रहण किया था। सू ची तब भी अपने घर में नजरबंद थीं।

नोबेल शांति पुरस्कार विजेता सू ची अपने देश की राजधानी रंगून स्थित विश्वविद्यालय एवेन्यू के अपने मकान में नजरबंदी की यातना जुलाई 1989 से झेल रही थीं। फौजी तानाशाही के सख्त पहरों के बावजूद वे अपना लोकतंत्र समर्थक आंदोलन जारी रखे हुए थीं और आंदोलनकारियों तक अपना संदेश व दिशा-निर्देश किसी न किसी तरह पहुंचाने में सफल हो रही थीं। यहां तक कि लंदन के समाचार-पत्रों में उनके लेख भी प्रकाशित हो जाते थे। लेखों के प्रकाशन के बाद रंगून विश्वविद्यालय का माहौल गरमा उठता था। सू ची की रिहाई के लिए विश्व भर से अपीलें हो रही थीं और इस बात को लेकर म्यांमार (बर्मा) धीरे-धीरे विश्व-बिरादरी से अलग-थलग पड़ता जा रहा था। एक तकनीकी वजह यह भी बतायी जा रही है कि जिस कानून के तहत सू ची को नजरबंद किया गया, उसमें नजरबंदी का प्रावधान पांच वर्ष के लिए ही है।

सू ची की संघर्ष-गाथा बहुत लंबी और गहन है, जिसने म्यांमार के सीधे-सादे लोगों को निडर होकर अन्याय के खिलाफ लड़ना सिखाया है। लेकिन भय-मुक्त होकर जीना और अन्याय के खिलाफ लड़ना सू ची को किसने सिखाया? भारत के 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' और उसके जनक महात्मा गांधी ने। सू ची बचपन से ही महात्मा गांधी से प्रभावित रही हैं। 'सत्याग्रह' उनके परिवेशजन्य संस्कार में है। स्वर्गीय इंदिरा गांधी या बेनजीर भुट्टो की तरह सू ची को राजनीतिक प्रशिक्षण अपने पिता से पाने का कोई अवसर नहीं मिला, क्योंकि पिता उनसे शैशव में बिछुड़ गए थे। सू ची की प्रारंभिक शिक्षा दिल्ली के जीसस एंड मेरी कान्वेंट और लेडी श्रीराम कालेज में हुई। उनकी मां खिन ची भारत में बर्मा की राजदूत के रूप में नियुक्त थीं। बाद में उन्होंने आक्सफोर्ड के सेंट ह्यून कालेज से डिग्री हासिल की। 1972 में उनका विवाह तिब्बती मामलों के एक ब्रिटिश शोधकर्ता माइकल ऐरिस से हुआ। दो साल तक वे अपने पति के साथ भूटान में रहीं, जहां श्री ऐरिक भूटान के इतिहास का अध्ययन करने गए थे। इस अवधि में सू ची अपने देश के बारे में अध्ययन-मनन करके जानकारियां प्राप्त करती रहीं। पिता की उन्हें कोई याद नहीं थी, किन्तु उनकी सार्वजनिक छवि से बेहद प्रभावित थीं। भूटान-प्रवास के बाद वे

अपने पति के साथ इंग्लैंड में बस गई थीं। किन्तु 1988 में अपनी मां की बीमारी की सूचना मिलने पर वे बर्मा आ गईं। मां की सेवा तो वे एक साल ही कर पाईं, लेकिन उनके बर्मा लौटने पर स्थितियों की करवट ने उन्हें राष्ट्र की सेवा में पूरी तरह खपा लिया। वह वापस इंग्लैंड लौट ही नहीं पाईं।

जुलाई, 1988 उनके जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ था। तब से आज तक वे सैनिक तानाशाही के शिकंजे में फंसी थीं। उस वर्ष छात्रों के आंदोलन को दबाने के लिए फौजी सरकार ने व्यापक हिंसा का प्रयोग किया था, जिसमें सैकड़ों लोग मारे गए थे। इस घटना ने सू ची को हिला कर रख दिया। उन्होंने दो महीने बाद ही 'नेशनल लीग फार डेमोक्रेसी' नामक पार्टी का गठन कर लिया और दिसंबर 1988 में आम-चुनावों की मांग उठा दी। उनका आंदोलन महीनों चला। इस बीच उनकी मां की मृत्यु हो गई। सैनिकशाही ने दमन-चक्र चलाकर विद्रोह को कुचल दिया और 19 जुलाई 1989 को सू ची को उनके घर में नजरबंद कर दिया था।

इसके बाद तो सू ची ने उस आंदोलन को अपनी सारी शारीरिक और आत्मिक शक्ति सौंप दी थी। उनके आंदोलन में हर वर्ग के लोग शामिल होने लगे थे। बौद्ध भिक्षुओं तक ने इस आंदोलन में अपनी जानें गंवाई। इसी नजरबंदी के दौरान सू ची की पार्टी 'नेशनल लीग फार डेमोक्रेसी' ने चुनाव लड़ा और 27 मई, 1990 को 485 में से 392 सीटें जीतकर अभूतपूर्व विजय हासिल की। लेकिन सैनिक जनरलों ने उन्हें सत्ता नहीं सौंपी, न ही उन्हें नजरबंदी से रिहा किया। 27 मई, 1994 को उनकी विजयी पार्टी की संसद का कार्यकाल बिना किसी सत्र की बैठक हुए ही समाप्त हो गया। औपचारिक रूप से इस संसद का गठन नहीं हुआ, न सांसदों को शपथ दिलाई गई। आंग सान सू ची को तो चुनाव-अभियान के दौरान ही नजरबंद कर दिया गया था।

सू ची की रिहाई के लिए समूचे विश्व से मानवाधिकार समर्थकों की आवाजें उठती रही थीं। लोकतंत्र समर्थक अनेक देशों ने प्रयत्न किए। नोबेल पुरस्कार विजेताओं ने भी सामूहिक अभियान चलाया। आठ नोबेल हस्तियों और अमरीका के राष्ट्रपति बिल क्लिंटन के नाम भी अपीलकर्ताओं में शामिल रहे। लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। उनकी पार्टी चुनाव में बहुमत से जीती पर उसे सैनिक शासन ने सत्ता में नहीं आने दिया। उन्हें 'नोबेल पुरस्कार' मिला, पर वह पुरस्कार लेने के लिए अपने घर की नजरबन्दी से बाहर नहीं जा सकी थीं। विश्व-जनमत के दबाव से म्यांमार की सैनिक सरकार ने अपने प्रशासन में कुछ सतही सुधार घोषित किए। सू ची की रिहाई के लिए भी शर्त रखी कि वह रिहाई के साथ ही राजनीति से सन्यास ले लें या बर्मा छोड़कर अपने घर ब्रिटेन लौट जाएं। लेकिन परिवार से अलग इस युवती का मनोबल नहीं टूटा। उन्होंने 'फ्रीडम फ्राम फीयर' (डर से मुक्ति) शीर्षक पुस्तक लिखकर पूरी दुनिया की आत्मा को झकझोर दिया था।

सू ची 1948 में बर्मा को औपनिवेशिक शासन से मुक्ति दिलाने वाले नेता आंग सान की बेटी हैं। सू ची के सिर से पिता का साया तभी उठा गया था, जब वह महज दो साल की बच्ची थीं। आंग सान बर्मा के राष्ट्र-निर्माता माने जाते हैं। 19 जुलाई, 1948 को आंग सान और उनके मंत्रिमंडल के सारे सदस्यों की निर्मम हत्या कर दी गई थी। उस हत्याकांड से केवल बर्मा के प्रथम प्रधानमंत्री ऊ नू ही जीवित बचे थे, क्योंकि वे उस दिन सुबह भगवान बुद्ध की आराधना और ध्यान में लगे रहने के कारण मंत्रिमंडल की बैठक में दस मिनट लेट पहुंचे थे। उसी बीच उनके सारे साथी गोलियों के शिकार हो चुके थे। उन्हीं ऊ नू से जनरल ने विन ने 1962 में सत्ता छीनी थी। तब से सू ची का परिवार सैनिक तानाशाही का शिकार बना हुआ था।

आज सू ची 'विश्व की सबसे निडर स्त्री' मानी जाती हैं। फिर भी आश्चर्य है कि हर वर्ष 8 मार्च को 'महिला-मुक्ति दिवस' मनाने वाली महिला संस्थाओं ने सू ची की रिहाई के लिए कोई जोरदार प्रयत्न नहीं किया। भारतीय उपनिषद, दर्शन, राजनीति, साहित्य और गांधी के अहिंसक सत्याग्रह से प्रभावित इस जुझारू महिला के पक्ष में भारतीय महिला संगठनों की आवाज भी बुलंद नहीं हो पाई।

संसार के अधिकतर लोगों ने सू ची का नाम तब सुना, जब 1991 में उनके लिए 'नोबेल शांति पुरस्कार' घोषित किया गया। आज सू ची का नाम स्वतंत्रता, लोकतंत्र और मानवाधिकार के लिए संघर्ष का प्रतीक बन गया है। विश्व के सभी स्वतंत्रता-प्रेमी नागरिक उनके लिए चिंतित रहे। लेकिन उनकी नजरबंदी कायम रही। इसके साथ ही कायम रहा, उनका दृढ़-संकल्प कि आंज नहीं तो कल, उनकी जीत होगी ही। दक्षिण अफ्रीका के जुझारू नेता नेल्सन मंडेला की तरह एक दिन उनकी भी विजय होगी, क्योंकि उनकी निर्वासित सरकार थाईलैंड की सीमा पर अपना काम कर रही थी और म्यांमार की जनता ने भी उन्हें भुलाया नहीं था। आखिरकार उनकी बिना शर्त रिहाई उनके दृढ़ संकल्प और जनता के विश्वास की जीत ही तो है।

जी-302, सेक्टर-22,
नोएडा-201301।

सुनिश्चित रोजगार योजना : एक वरदान

एम० एल० रायपुरिया*

प्रधानमंत्री श्री पी० वी० नरसिम्ह राव ने 15 अगस्त, 1993 को स्वतंत्रता की 46वीं वर्षगांठ पर लाल किले की प्राचीर से सुनिश्चित रोजगार योजना का शुभारंभ करते हुए कहा था "वैसे जवाहर रोजगार योजना चल रही है, और योजनाएं चल रही हैं लेकिन जो बेकार हैं उनको अनिवार्य ढंग से काम मिले यही इस नई स्कीम की असली बात है।"

इसी के अनुसरण में सुनिश्चित रोजगार योजना 2 अक्तूबर 1993 को देश के 261 जिलों के उन 1778 विकास खण्डों में प्रारम्भ की गई, जो रेगिस्तानी, जनजातीय, पहाड़ी और सूखे की आशंका वाले क्षेत्र थे, जिनकी पहचान पिछड़े विकास खंडों के रूप में की गई थी, और जहां नयी सार्वजनिक वितरण प्रणाली लागू थी। धीरे-धीरे इस योजना का विस्तार किया गया है और आज यह 2446 पिछड़े विकास खंडों में चलायी जा रही है।

रोजगार अवसरों का सृजन करना हमेशा से भारत की विकास योजनाओं का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सरकार ने समय-समय पर कई नए कार्यक्रम चलाए ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में अभिशाप बन बैठी बेरोजगारी की समस्या का निवारण हो सके।

आठवीं योजना के दृष्टिकोण पत्र में साफ-साफ कहा गया है कि योजना का संपूर्ण प्रयास रोजगार के अवसरों में तेजी से वृद्धि करने की दिशा में ही होना चाहिए।

मजदूरी के स्तर में वृद्धि

सुनिश्चित रोजगार योजना गांव के बेरोजगारों के लिये वरदान सिद्ध हुई है। इससे पिछड़े इलाकों के लोगों को रोजगार के साथ-साथ खाद्यान्न सुरक्षा भी मिलती है। राज्यों से प्राप्त रिपोर्टों से पता चला है कि जहां कहीं भी पिछड़े इलाकों में इस योजना को लागू किया गया है, वहां के कम मजदूरी वाले इलाकों में मजदूरी के स्तर में भी वृद्धि हुई है, गरीबों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है और बेरोजगार लोगों के शहरों की ओर पलायन पर रोक लगी है।

इस योजना में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं। अब जल-ग्रहण क्षेत्र विकास कार्यक्रम तथा स्थायी महत्व की उत्पादक परिसम्पत्तियों के जरिये रोजगार के अवसर बढ़ाने पर जोर दिया जा रहा है। इस वर्ष से बागवानी संबंधी कार्यों को भी इस योजना में महत्व दिया जा रहा है।

योजना का विस्तार

इस योजना का लगातार विस्तार किया जा रहा है। वर्ष 1993-94 में 600 करोड़ रुपये की धनराशि को बढ़ाकर केन्द्र सरकार ने 1994-95 में 1,200 करोड़ रुपये कर दिया था। इस वर्ष भारत सरकार ने इसे और बढ़ाकर 1,570 करोड़ रुपये कर दिया है। राज्य सरकारों की ओर से भी खर्च की जाने वाली राशि को मिलाकर इस वर्ष कुल 1,884 करोड़ रुपये की इस योजना से निर्धन ग्रामीणों को लाभ मिलेगा।

इस योजना में 1993-94 में 494.74 लाख श्रम दिवस और 1994-95 में 2739.75 लाख श्रम दिवस रोजगार सृजित हुआ है। वर्ष 1993-94 में लगभग 13,980 निर्माण कार्य पूरे किए गए थे और 1994-95 में 1,16,800 निर्माण कार्य पूरे किए जा चुके हैं।

वर्ष 1995-96 में अप्रैल से जून 1995 तक दो करोड़ श्रम दिन से अधिक रोजगार के अवसर जुटाए जा चुके हैं। भारत सरकार ने इस योजना के लिये राज्यों को केन्द्रीय सहायता के रूप में 653.30 करोड़ रुपये की राशि भेज दी है। राज्यों से मई 1995 तक इस योजना पर 107.26 करोड़ रुपये खर्च किए जाने की सूचना प्राप्त हुई है।

योजना का कार्यान्वयन

सुनिश्चित रोजगार योजना उन सभी ग्रामीण लोगों के लिए है जो इस योजना के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में रहते हैं लेकिन इसका लक्ष्य वे जरूरतमंद लोग हैं जो रोजगार चाहते हैं। यह योजना उन ग्रामीण गरीबों को 100 दिन के अकुशल शारीरिक

लेखक ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय में अवर सचिव हैं।

कार्य के लिए रोजगार सुनिश्चित कराती है जिन्हें रोजगार की आवश्यकता है। सौ दिनों के रोजगार का आश्वासन 18 वर्ष से अधिक और 60 वर्ष से नीचे की उम्र वाले पुरुष और महिलाओं के लिये है जो सामान्यतः सुनिश्चित रोजगार योजना के अंतर्गत आने वाले खण्डों के क्षेत्रों में रहते हैं। इस योजना के अन्तर्गत प्रति परिवार अधिक से अधिक दो वयस्कों को गैर-कृषि मौसम में 100 दिनों का रोजगार सुनिश्चित कराया जाता है।

जिले का कलक्टर/उपायुक्त सुनिश्चित रोजगार योजना के कार्यान्वयन प्राधिकारी के रूप में प्रभारी होता है। कार्यान्वयन प्राधिकारी के रूप में वह सुनिश्चित रोजगार योजना के अंतर्गत कवर किए गए जिलों के अंतर्गत खंडों के बीच कार्य का समन्वय और निधियों के आबंटन के लिए जिम्मेदार होता है। वह जिले में विभिन्न कार्यान्वयन एजेंसियों को कार्य के आबंटन के लिए भी उत्तरदायी होता है।

सभी कार्यों का निष्पादन विभाग में केवल संबंधित कार्यान्वयन एजेंसियों द्वारा किया जाता है तथा किसी भी हालत में कार्यान्वयन एजेंसियों द्वारा इन कार्यों को ठेकेदारों से नहीं कराया जाता है।

सुनिश्चित रोजगार योजना के अंतर्गत दी जाने वाली मजदूरी वही होती है, जो न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अंतर्गत रोजगार की अनुसूची में निर्धारित है। पुरुष और महिला श्रमिकों को एक ही कार्य अथवा समान प्रकृति वाले कार्यों के लिये समान पारिश्रमिक दिया जाता है और काम देते समय उनमें कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। मजदूरी का एक अंश खाद्यान्न के रूप में दिया जा सकता है, बशर्ते कि यह प्रति श्रम दिवस दो किलोग्राम से अधिक और लागत में मजदूरी के 50 प्रतिशत से अधिक न हो। खाद्यान्न के रूप में मजदूरी का भुगतान खुले बाजार में मूल्य के आधार पर वैकल्पिक होता है।

18 वर्ष से अधिक तथा 60 वर्ष से कम आयु वाले लोग, जो योजना के अंतर्गत रोजगार चाहते हैं, को अपनी-अपनी ग्राम पंचायतों में अपना नाम दर्ज कराना चाहिए। ग्राम पंचायत पंजीकृत लोगों की संख्या के बारे में रिपोर्ट उपायुक्त को भेजती है। इस योजना के अंतर्गत पंजीकृत मजदूरों को एक पारिवारिक कार्ड जारी किया जाता है।

यदि उस पंचायत क्षेत्र में रोजगार उपलब्ध न हो तो उन्हें उनके खण्ड क्षेत्र के भीतर ही किसी और स्थान पर रोजगार उपलब्ध कराया जाता है।

सुनिश्चित रोजगार योजना के अंतर्गत रोजगार चाहने वाले लोगों को एक फार्म पर पंचायत को आवेदन करना होता है। इस फार्म की प्रतियां स्थानीय पंचायत में उपलब्ध होती हैं, वरन् हाथ से लिखी हुई भी हो सकती हैं। जब कभी कम से कम 20 वयस्क, जिनके नाम योजना के अंतर्गत जारी किए गए पारिवारिक कार्ड में दर्ज हैं, मंदी के मौसम के दौरान काम की मांग करते हैं तो सुनिश्चित रोजगार के अंतर्गत खण्ड विकास अधिकारी द्वारा 15 दिन के भीतर नए काम शुरू करके, इन लोगों को अकुशल शारीरिक श्रम वाला रोजगार मुहैया कराया जाना चाहिए। यदि उनके लिये किसी चल रही सुनिश्चित रोजगार योजना विभागीय अथवा क्षेत्र में चल रहे अन्य कार्यों में इस तरह का रोजगार उपलब्ध हो, तो वहीं पर रोजगार उपलब्ध कराया जाना चाहिए। यदि खंड विकास अधिकारी इस बात से संतुष्ट हो कि शुरू किया गया नया कार्य 30 दिनों के भीतर पूरा हो जाएगा तो वह दस व्यक्तियों द्वारा मजदूरी की मांग करने पर नया काम शुरू कर सकता है। उपायुक्त कार्यों को शुरू करने के बारे में खण्ड विकास अधिकारियों को अनुदेश और मार्गदर्शन देते हैं।

जैसा कि प्रधान मंत्री श्री पी0 वी0 नरसिम्ह राव ने कहा है कि रोजगार के पर्याप्त अवसर जुटाए बिना गरीबी दूर नहीं की जा सकती, सुनिश्चित रोजगार योजना से देश के सबसे पिछड़े इलाकों में रोजगार के इतने अधिक अवसर पैदा किए जा रहे हैं, जिनसे निर्धनों के जीवन-स्तर में निश्चित रूप से सुधार हो रहा है।

यह योजना दिन-प्रतिदिन बल पकड़ रही है। अपनी चरम सीमा पर यह योजना ग्रामीण रोजगारी की प्राप्ति तथा देश के ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी उन्मूलन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित होगी।

ग्रामीण आवास और स्वयंसेवी संगठन

अरविन्द कुमार सिंह
वरिष्ठ संवाददाता, 'अमर उजाला'

आवास न केवल मानव-जीवन की बुनियादी जरूरत है बल्कि यह तमाम अंचलों की सांस्कृतिक संपन्नता और रहन-सहन के तौर तरीकों को भी प्रतिबिंबित करता है। ग्रामीण इलाकों में हो या शहरों में, आवास निर्माण गतिविधियां सामाजिक-आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देती हैं। भारत के महानगरों में झोपड़-पट्टियों के रूप में हमें जो कुछ दिखता है वह रोजगार की तलाश में आए लोगों की आश्रय स्थली है। निश्चय ही इन झोंपड़-पट्टियों को किसी तरह से मानवीय रिहाइश के अनुकूल नहीं माना जा सकता है लेकिन आर्थिक बेबसी एक बड़ा कारण है जो ऐसी समस्याओं से जुड़ी है। ग्रामीण इलाकों में आवास की स्थिति अच्छी नहीं है। वहां जहां एक ओर मूलभूत सुविधाओं का अभाव है वहीं महिलाओं तथा उपेक्षित वर्गों की दशा आज भी बेहद दीन हीन है। ऐसा नहीं है कि सरकार इस स्थिति से अनभिज्ञ है लेकिन समस्या इतनी जटिल है कि उसे देखते हुए यह मान लिया गया है कि ग्रामीण गरीबों को बेहतर आश्रय स्थल देने का काम अकेले सरकार नहीं कर सकती है।

पांच सालों में 50 लाख मकान

जवाहर रोजगार योजना के तहत आने वाली इंदिरा आवास योजना की मदद से सरकार ने 1995-96 में 10 लाख ग्रामीण आवास बनाने का एक बेहद क्रांतिकारी काम हाथ में लिया है। समाज के बेहद उपेक्षित वर्गों को एक सम्मानजनक आश्रय स्थल देने का जो अभियान इस साल शुरू हुआ है उससे अगले पांच सालों में 50 लाख नये मकान बनेंगे। योजना में पहले की बहुत सी खामियों को दूर करने का प्रयास भी किया गया है और ग्रामीण क्षेत्र तथा रोजगार मंत्रालय ने इस कार्यक्रम को मजबूती देने के लिए पहली बार आवास क्षेत्र में स्वयंसेवी संगठनों की सक्रिय भागीदारी की शुरुआत करके ग्रामीण आवास क्षेत्र में एक नयी संभावना भरी राह खोली है।

स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका

कई क्षेत्रों में स्वयंसेवी संगठनों ने बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। खासतौर पर गरीबों और कमजोर तबकों से जुड़े कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी और जनसहयोग को सुनिश्चित करना एक जरूरी बात मानी जा रही है। इन चीजों के लिए स्वयंसेवी संगठन प्रेरक की भूमिका निभा सकते हैं। खुद ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में ही स्वयंसेवी संगठनों ने नवीनतम प्रौद्योगिकी के प्रसार और विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों के बारे में जागरूकता पैदा करने समेत कई मुद्दों पर सराहनीय और विश्वसनीय भूमिका निभाई है। विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में सरकार ने इस बीच में स्वयंसेवी संगठनों की अधिकाधिक भूमिका पर बल दिया है।

ग्रामीण क्षेत्र तथा रोजगार मंत्रालय से जुड़ी संस्था लोक कार्यक्रम और ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद (कापार्ट) ने तो 1986 से ही ग्रामीण समृद्धि के लिए परियोजनाओं के क्रियान्वयन में स्वैच्छिक संगठनों को काफी वित्तीय और तकनीकी मदद दी है। कापार्ट ने ग्रामीण क्षेत्रों में इन संगठनों की मदद से तमाम कामों को सफलता से अंजाम दिया है तथा अब तक 4,250 स्वंयसेवी संस्थाओं की 10,891 परियोजनाओं को मंजूरी दी। इस अवधि में इन संस्थाओं को 220 करोड़ रुपये की धनराशि भी मंजूर की गयी जिसमें से 160 करोड़ रुपये जारी किए जा चुके हैं। जवाहर रोजगार योजना, ग्रामीण जलापूर्ति, स्वच्छता कार्यक्रम समेत कई महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में कापार्ट की मदद से स्वयंसेवी संगठनों ने अपनी भूमिका निभाई है। कापार्ट एक तरह से अब स्वयंसेवी संगठनों का एक बड़ा समूह बन चुका है तथा आज की महाशक्ति में आधे से ज्यादा सदस्य स्वयंसेवी संगठनों से आते हैं। लेकिन जहां तक ग्रामीण आवास की बात है यह सच है कि इस क्षेत्र में स्वयंसेवी संगठनों में बहुत कम अनुभव है। लेकिन अनुभव भी मैदान में उतरने पर ही आता है। आगे ऐसा लगता है कि 50 लाख ग्रामीण आवासों के निर्माण में ये स्वयंसेवी संगठन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने जा रहे हैं।

ग्रामीण आवास क्षेत्र में खामियां

ग्रामीण आवास की समस्या अपने आप में बेहद जटिल है। इंदिरा आवास योजना के माध्यम से 1985-86 से मार्च 1995 तक 2372 करोड़ रुपये की लागत से 19.87 लाख मकान उपलब्ध कराये जा सके हैं लेकिन ग्रामीण इलाकों में आवास इकाइयों की जो कमी है उसे देखते हुए अनुमान लगाया गया है कि सन् 2000 तक 310 लाख ग्रामीण आवास इकाइयों की कमी होगी। सरकारी प्रयासों के बावजूद यह अंतर बढ़ता जा रहा है। इंदिरा आवास इकाइयों की जो कमी है उसे देखते हुए अनुमान लगाया गया है

कि सन् 2000 तक 310 लाख ग्रामीण आवास इकाइयों की कमी होगी। सरकारी प्रयासों के बावजूद यह अंतर बढ़ता जा रहा है। इंदिरा आवास योजना का अभी तक लक्ष्य केवल अनुसूचित जातियां तथा जनजातियां रही हैं लेकिन अब अन्य ग्रामीण गरीबों को भी इस दायरे में लाने का निर्णय लिया गया है। जहां तक 10 लाख मकानों के निर्माण का इस साल का महत्वाकांक्षी लक्ष्य है, उसे देखते हुए सरकार की ओर से जो पहल की जा रही है उसके कई सकारात्मक पहलू हैं। सामान्यतया ग्रामीण आवास क्षेत्र कई खामियों से भरा है। अलग-अलग अंचलों में गांवों में बने मकानों में पुरानी घिसी पिटी 'परंपराएं' देखने को मिलती हैं, जो कई दृष्टि से जोखिम भरी तो हैं ही उनमें लागत भी अधिक आती है। शौचालय, उन्नत चूल्हों, हवादार कमरों, रोशनी, गलियों से लेकर साफ सफाई से जुड़ी अन्य बातों का अभाव भी दिखता है। शहरी और ग्रामीण आबादी के बीच स्वच्छता सुविधाओं में भी असंतुलन है। अब तक 46.63 प्रतिशत शहरी और 11 प्रतिशत ग्रामीण आबादी को स्वच्छता संबंधी सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकी हैं।

गांवों में अधिकांश मकान कच्चे हैं। सन् 1981 की जनगणना आंकड़ों के मुताबिक 52 प्रतिशत मकानों की दीवारें मिट्टी से बनी हैं जबकि 46 प्रतिशत मकानों की छतों को बनाने में गोबर, बांस और गारे का इस्तेमाल किया गया है। सन् 1991 की स्थिति में ग्रामीण क्षेत्रों में 206 लाख मकानों का अभाव था। दूसरी ओर आबादी के दबाव को देखते हुए सालाना 20 लाख मकान अलग से बनाने की जरूरत है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 43वें दौर के परिणामों से एक बेहद चिंताजनक यह तस्वीर उभरी है कि देश में 11.5 प्रतिशत परिवार बिना मकान के हैं। यही नहीं ग्रामीण आवास का एक चिंताजनक पहलू यह भी है कि कुल ग्रामीण जनसंख्या के 36.66 प्रतिशत लोग एक कमरेवाले मकानों में रहते हैं। खेतिहर भूमिहीन मजदूरों को 1971 में आवास स्थल देने की शुरुआत की गयी तथा 1985-86 में भारत सरकार ने केंद्रीय क्षेत्र में गांवों के अनुसूचित जाति/जनजातियों और मुक्त बंधुआ श्रमिकों में भी दीनहीन लोगों के लिए इंदिरा आवास योजना की शुरुआत की। 1989-90 से यह योजना जवाहर रोजगार योजना का एक अंग बन गयी पर योजना की शुरुआत से 1991-92 तक मात्र 10.65 लाख मकान बन सके। इस योजना को गति 1994-95 में चार लाख मकान बनाने के लक्ष्य के साथ मिली तथा 1995-96 में 1000 करोड़ की भारी रकम इस क्षेत्र के लिए रखी गयी है। इन 10 लाख मकानों में कम से कम छह लाख मकान अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए बनेंगे।

लोगों की भागीदारी आवश्यक

ग्रामीण क्षेत्रों में मकान बनाने के काम में लगी अधिकांश एजेंसियां विवादित हैं। मकान बनाने में बहुतेरी कमियां भी सामने आयी हैं। इन्हें मद्देनजर रखकर अक्तूबर 1992 में ग्रामीण विकास पर मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में कई प्रमुख मुद्दे उठाये गये। उचित प्रौद्योगिकी तथा उसके प्रसार, ग्रामीणों के उचित मार्गदर्शन समेत विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देना जरूरी है। उत्तर प्रदेश जैसे बड़े आबादी वाले राज्यों में हालत और गंभीर है जहां अभी आवादी 13.92 करोड़ तो हो ही गयी है, रोज 9000 लोग और जुड़ रहे हैं। राज्य में ही ग्रामीण क्षेत्रों में 40.9 लाख मकानों की कमी है। 1995-96 में यहां इंदिरा आवास योजना के तहत 1,89,211 मकान बनाने का लक्ष्य है।

इस जटिल हालत में जरूरी यही है कि गांवों में आवास संबंधी गतिविधियां एक जनांदोलन की शक्ल लें। इस तथ्य को अब मान लिया गया है कि इन्हीं विकास कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू किया जा सकता है जिनमें बड़े पैमाने पर जनता की भागीदारी हो। जिनके लिए कार्यक्रम बनाये जाते हैं-इसकी सक्रिय भागीदारी अगर उसमें नहीं है तो विकास कार्यक्रमों का असली लाभ मिल नहीं पाता है। यह उद्देश्य बगैर स्वयंसेवी तथा गैर सरकारी संस्थाओं को शामिल किए हासिल करना संभव नहीं। कापार्ट ने 1986-87 से इस क्षेत्र में अच्छा काम किया है और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन में उसने स्वयंसेवी संगठनों की मदद से खंड विकास स्तर से लेकर पंचायत स्तर पर लाभार्थी समितियां बनाई हैं तथा गांवों में विज्ञान प्रौद्योगिकी के प्रसार में काफी मदद की है।

ग्रामीण स्वच्छता क्षेत्र में स्वैच्छिक संस्थाएं कापार्ट की काफी मददगार रही हैं। कापार्ट ने इस क्षेत्र में 500 संस्थाओं की मदद से काफी जागृति पैदा की। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण में ऐसा संकेत भी मिला है कि गांवों में सरकारी और निजी प्रयासों से बड़ी संख्या में स्वच्छ शौचालयों के निर्माण का काम शुरू हुआ है। स्वच्छता का क्षेत्र भी आवास से जुड़ा रहा है तथा 1992 में पहली बार केन्द्र सरकार राष्ट्रीय स्तर पर एक संगोष्ठी में इस नतीजे पर पहुंची कि ग्रामीण स्वच्छता का कार्यक्रम जनभागीदारी के बिना सफल नहीं हो सकता। गैर सरकारी संगठन समाज में व्यापक संपर्क की वजह से इन प्रयासों को गति दे सकते हैं। इसी आलोक में इस बीच में इस कार्यक्रम पर कुल परिव्यय में से 10 प्रतिशत व्यवस्था कापार्ट के माध्यम से स्वयंसेवी संस्थाओं के लिए करने पर विचार किया जा रहा है। दसवीं लोकसभा की शहरी और ग्रामीण विकास संबंधी स्थायी समिति ने अपनी ताजा रिपोर्ट में विभिन्न स्वच्छता कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी को अत्यधिक प्रोत्साहन देने के लिए मंत्रालय के प्रयासों की सराहना की है।

ग्रामीण आवास क्षेत्र में पहली बार स्वयंसेवी संगठन अपनी प्रभावी भूमिका निभाने जा रहे हैं। इस क्षेत्र में इन संगठनों का

अनुभव कम होने की वजह से कापार्ट भी विशेष सतर्कता बरत रहा है। इसी को मद्देनजर रख कापार्ट ने 30-31 मई 1995 को दिल्ली में दो दिवसीय राष्ट्रीय विचार गोष्ठी का आयोजन किया। इसमें प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्ह राव, ग्रामीण क्षेत्र तथा रोजगार राज्यमंत्री उत्तमभाई पटेल के अलावा विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों तथा स्वयंसेवी संगठनों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

महत्वपूर्ण सुझाव

कापार्ट के महानिदेशक डा० एम. के. रंजीत सिंह ने बताया कि इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में 20 बिंदुओं पर जनभागीदारी और प्रौद्योगिकी प्रसार के बारे में विचार हुआ। यह बेहद उपयोगी कार्यशाला रही और तमाम पहलुओं पर इसमें महत्वपूर्ण सुझाव उभर कर सामने आये। विभिन्न अंचलों की समस्याओं को मद्देनजर रखते हुए मकान निर्माण प्रौद्योगिकी अपनाने, लाभार्थी की जरूरतों के हिसाब से मकान बनाने, महिलाओं और पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी, निर्माण गतिविधि में ग्रामीण बेरोजगार युवाओं, बढ़ई और अन्य कारीगरों का सहयोग लेने, मकान निर्माण तकनीक के बारे में ग्रामीणों को शिक्षित करने, प्राकृतिक आपदाओं की आशंका वाले इलाकों में खास प्रौद्योगिकी अपनाने, नया ढांचा खड़ा करने जैसे विषय उठे। विभिन्न इलाकों में कम लागत प्रौद्योगिकी पर अनुसंधान की दिशा में भी बल दिया गया क्योंकि अभी कुछ ही ऐसे प्रौद्योगिकी विकल्प उपलब्ध हैं जो किफायती हैं। यह तय किया गया कि कापार्ट स्वयंसेवी संगठनों, प्रौद्योगिकी विकास तथा बैंकिंग संस्थाओं के बीच सेतु का काम करेगा। ऊर्जा तथा पेयजल को भी आवास का एक अंग माना गया। आवास संबंधी गतिविधियों पर निगरानी के लिए एक कार्यबल का गठन भी किया गया है।

कापार्ट की भूमिका

कापार्ट को इस वर्ष 10 लाख मकानों में से मात्र 30 हजार मकान बनाने की योजना को अमलीजामा पहनाने का काम मिला है। देखने में यह छोटा लगता है लेकिन हकीकत में यह एक ऐसी क्रांतिकारी शुरुआत है जो ग्रामीण आवास क्षेत्र में कायापलट करने के साथ नई संभावनाएं जगा रही है। यह हिचकिचाहट पहले दिख रही थी कि ग्रामीण आवास क्षेत्र में चूंकि स्वयंसेवी संगठनों का अनुभव नहीं है लिहाजा दिक्कतें आ सकती हैं पर अन्य कार्यक्रमों में उनकी भूमिका को देखते हुए यह माना जा रहा है कि उनकी भूमिका अच्छी होगी। सरकार ने इधर 10 लाख मकानों को लेकर एक टास्क फोर्स भी गठित की है जिसने कुछ मुद्दों पर योजना में परिवर्तन भी सुझाए हैं।

इस नयी भूमिका में स्वयंसेवी संगठनों के लिए भी कई चुनौतियां हैं। उन्हें जहां एक ओर ग्रामीण आवास क्षेत्र में नया जागरण शुरू करना है वहीं लाभार्थी को भी संतुष्ट करना है। कापार्ट ने विभिन्न अंचलों में ग्रामीण आवास समस्या के 11 पहलुओं को मद्देनजर रखकर चार क्षेत्रीय समितियां बनायी हैं। यही नहीं आवास के तकनीकी पहलुओं को लेकर भी सात सदस्यीय एक उपसमिति बनायी गयी है जिसमें हुडको, जी.बी. आर.आई. तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधि हैं। उपसमिति ग्रामीण आवास की मौजूदा उपलब्ध प्रौद्योगिकी का संकलन कर रही है तथा कुछ समय के भीतर विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में उनकी पुस्तिकाओं का प्रकाशन होगा। प्रौद्योगिकी प्रदर्शन, प्रशिक्षण आदि भी उपसमिति का क्षेत्र होगा। कापार्ट के साथ इस अभियान में ग्रामीण इलाकों में अपना आधार रखने वाले संगठन शामिल होंगे। स्वयंसेवी संगठनों के लिए बने दिशा-निर्देश में संगठनों को लाभार्थी परिवारों की पहचान की बात भी कही गयी है तथा कहा गया है कि बनने वाले मकानों में रसोईघर, उन्नत चूल्हा, स्वच्छ शौचालय, स्टोर तथा सामुदायिक आधार पर पेय जल का प्रबंध होना चाहिए। दिशा-निर्देश से ऐसा लगता है कि स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका एक शिक्षक तथा उत्प्रेरक की होगी। वे लाभार्थी को निर्माण गतिविधि के दौरान उचित मार्गदर्शन देंगे।

आशा व्यक्त की जा रही है कि इस काम में स्वयंसेवी संगठन बेहद मददगार होंगे। गांवों में यों भी मकान निर्माण गतिविधि में लोग एक दूसरे के मददगार होते हैं तथा श्रम से लेकर साधन तक में एक दूसरे की मदद करते हैं। अगर सामुदायिक भागीदारी की प्रकृति को और प्रोत्साहन दिया गया तथा कुछ नए माडल सामने आये तो ग्रामीण आवास के मौजूदा परिदृश्य में काफी परिवर्तन होगा। लाभार्थियों की ओर से सक्रिय भागेदारी तय करने के बाद कई समस्याएं स्वयं समाप्त हो जायेंगी।

लोग अपने मकान स्वयं बनाएं

इंदिरा आवास योजना के पीछे भावना यही थी कि मकान निर्माण कोई बाहरी एजेंसी न करे बल्कि वह बनाये जो उसका मालिक हो। स्वाभाविक है कि कोई भी व्यक्ति अपना मकान अच्छा ही बनाएगा तथा उसकी गुणवत्ता होगी। अभी तक कई राज्यों में इस योजना में बहुत सी कमियां सामने आयी हैं। बहुत से जगहों पर बने बनाये मकानों को लोगों ने स्वीकार नहीं किया। शौचालय जो इंदिरा आवास योजना का अनिवार्य अंग हैं कई मकानों में बनाये ही नहीं गये। जहां शौचालय बने भी वहां लोगों

(शेष पृष्ठ 23 पर)

गांवों का स्वरूप बदल रहा है

✍ नवीन पंत

पिछले दस वर्षों के दौरान देश के ग्रामीण क्षेत्रों में समाज के सबसे कमजोर वर्गों के लिए 18 लाख से अधिक मकान बनाए गए हैं। ये मकान इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत बनाए गए हैं और इन मकानों के निर्माण का पूरा खर्च केन्द्र सरकार ने उठाया है। इन मकानों के निर्माण से ग्रामीण भारत का चेहरा बदल रहा है। ये सुन्दर, हवादार और पक्के मकान ग्रामीण जीवन के रहन-सहन में क्रांतिकारी परिवर्तन के अग्रदूत हैं।

प्रत्येक मकान का नक्शा, आकार और डिजाइन स्थानीय परिस्थितियों को देख कर तैयार किया जाता है। मकान निर्माता को इस बात की पूरी स्वतंत्रता होती है कि वह अपने तरीके से मकान का निर्माण करे। प्रयत्न यह होता है कि कम से कम जगह में अधिक से अधिक सुविधाएं उपलब्ध हों। मकान निर्माता को केवल कुछ शर्तों का पालन करना पड़ता है। ये शर्तें हैं : मकान का कुर्सी क्षेत्र 20 वर्गमीटर होना चाहिए। मकान में एक रसोईघर, धुंआ रहित चूल्हा और एक स्वच्छ शौचालय होना चाहिए। सरकार मकान निर्माण के लिए 9000 रुपये स्वच्छ शौचालय और धुएं रहित चूल्हे के निर्माण के लिए 1500 रुपये और बुनियादी ढांचे तथा सामान्य सुविधाओं के लिए 3500 रुपये यानी कुल 14,000 रुपये का अनुदान देती है। दूर-दराज के क्षेत्रों और पर्वतीय क्षेत्रों में मकान निर्माण की लागत 15,800 रुपये तक हो सकती है।

इन्दिरा आवास योजना

इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत लाभार्थियों का चुनाव स्थानीय पंचायत, विधान सभा सदस्य और समाज के प्रतिष्ठित सदस्यों के साथ विचार विमर्श के बाद किया जाता है। अभ्यर्थियों का चुनाव करते समय प्राथमिकता का क्रम इस प्रकार रहता है: मुक्त बंधुआ मजदूर, अनुसूचित जाति/अनसूचित जनजाति के परिवार, गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बसर करने वाले ऐसे परिवार जिनकी मुखिया विधवा महिलाएं या अविवाहित महिलाएं हों, प्राकृतिक आपदाओं से पीड़ित अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के परिवार और गरीबी की रेखा से नीचे के गैर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के परिवार।

सामान्यतः घर का आबंटन लाभभोगी परिवार की महिला के नाम किया जाता है। इसमें कोई कठिनाई होने पर आबंटन पति-पत्नी दोनों के नाम किया जाता है।

इन्दिरा आवास योजना 1985-86 में शुरू की गई थी। पहले यह ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी का हिस्सा थी। 1989-90 से इसे जवाहर रोजगार योजना के तहत जारी रखा गया है। जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत राज्य स्तर पर स्वीकृत बजट का 10 प्रतिशत इन्दिरा आवास योजना के लिए निर्धारित किया जाता है।

इस वर्ष वित्त मंत्री ने ग्रामीण विकास विभाग के परिव्यय को काफी बढ़ा दिया है। 1995-96 में इसे 7700 करोड़ रुपये कर दिया गया है। आठवीं योजना में ग्रामीण विकास के लिए 30,000 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई। पिछले दो वर्षों के दौरान इस मद में लगातार बढ़ोत्तरी करके सरकार ने इस लक्ष्य को प्राप्त करने का गंभीर प्रयास किया है।

वित्त मंत्री डा० मनमोहन सिंह ने इस वर्ष के बजट में ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे निर्धन लोगों के लिए 10 लाख मकान बनाने का प्रस्ताव किया है। यह देखते हुए कि 1994-95 में मात्र 3.71 लाख मकान बनाए गए थे। दस लाख मकान बनाने का लक्ष्य दोगुने से भी अधिक है। अगर इस बात पर विचार किया जाए कि पिछले 10 वर्षों में केवल 18,43,190 मकान बनाए गए थे और इस वर्ष 10 लाख मकान बनाए जाएंगे तो यह बात आसानी से समझ में आती है कि सरकार इस ओर कितना अधिक ध्यान दे रही है। वित्त मंत्री ने आशा प्रकट की है कि अगले पांच वर्षों के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों के निर्धनों के लिए 50 लाख मकान बनवाए जा सकेंगे। 1994-95 के बजट में गृह विहीन लोगों के घर बनाने के लिए 438 करोड़ रुपये की व्यवस्था थी। 1995-96 में सरकार ने उसे बढ़ाकर 1250 करोड़ रुपये कर दिया है।

मौन क्रांति

वास्तव में ग्रामीण क्षेत्रों में समाज के सबसे कमजोर वर्गों के

लिए मकानों का निर्माण मात्र विकास कार्य नहीं है। यह तो देश के ग्रामीण क्षेत्रों में एक मौन क्रांति की शुरुआत है। इस मौन क्रांति के परिणामस्वरूप जाति व्यवस्था के बंधन ढीले होंगे, अस्पृश्यता का कलंक समाप्त होगा, संकीर्णता और कट्टरपंथी शक्तियां कमजोर पड़ेंगी, ग्रामीणों के रहन-सहन में सुधार आएगा और ग्रामीण क्षेत्रों में विकास कार्यों में तेजी आएगी। आवास निर्माण का यह कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में उत्प्रेरक की भूमिका अदा करेगा और इसके चलते कालान्तर में ग्रामीण क्षेत्रों में झोपड़ पट्टियों का सफाया हो जाएगा।

मकानों की कमी

कुछ समय पूर्व राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन द्वारा लगाए गए एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में इस समय 3 करोड़ 10 लाख मकानों की कमी है। इनमें से 2 करोड़ 60 लाख मकानों की कमी ग्रामीण क्षेत्रों में है। इसके अलावा देश की बढ़ती हुई जनसंख्या की जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रतिवर्ष 20 लाख मकानों की जरूरत है। इनमें से भी अधिकांश मकानों की जरूरत देश के ग्रामीण क्षेत्रों में है। एक अन्य अनुमान के अनुसार जनता के बढ़ते हुए जीवन स्तर, संयुक्त परिवार प्रथा की समाप्ति और जनसंख्या वृद्धि के कारण सन् 2001 में देश में 4.5 करोड़ मकानों की कमी होगी। इनमें से 1 करोड़ मकानों की कमी शहरों में और बाकी कमी ग्रामीण क्षेत्रों में अनुभव की जाएगी।

मकानों की इस कमी के कारण सबसे अधिक कष्ट समाज के निर्बल वर्गों को भोगना पड़ता है। अब तक इन लोगों को गांव के बाहर, सबसे गन्दे क्षेत्र में मकान बनाने की जगह दी जाती थी। उनके मकान घास-फूस और मिट्टी के होते थे। ये मकान रहने वालों को गर्मी, सर्दी और बरसात में कोई सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकते थे। लेकिन अब इसमें बदलाव आ रहा है। अब इन लोगों को गांव में खुली, स्वास्थ्यकर और उपयुक्त जगह पर मकान बनाने की जगह दी जा रही है।

इन मकानों की तीन विशेषताएं उल्लेखनीय हैं। पहला इनमें से प्रत्येक में एक रसोईघर, धुआं रहित चूल्हा और एक स्वच्छ शौचालय (पानी से मल बहाने वाला) होगा। मकानों की इन तीन विशेषताओं के कारण इन मकानों को मौन क्रांति का अग्रदूत कहा जा सकता है। ग्राम्य समाज के अन्य मकान निर्माता भी अपने मकानों में इन विशेषताओं को शामिल करेंगे। मकानों के डिजाइन में इन विशेषताओं के कारण कालान्तर में ग्रामीण जीवन का नक्शा ही बदल जाएगा।

कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन ने देश के 14 राज्यों में इन्दिरा आवास योजना के कार्यान्वयन का त्वरित अध्ययन किया। इस अध्ययन से पता चलता है कि लाभ पाने वाले परिवारों का चयन निर्धारित कसौटियों के अन्तर्गत किया गया। उनमें धांधली की कोई शिकायत नहीं मिली हैं। करीब 90 प्रतिशत मकानों का निर्माण समूहों में किया गया और 80 प्रतिशत मकानों का निर्माण गांव में ही किया गया। लगभग 50 प्रतिशत मकानों की गुणवत्ता अच्छी थी और 84 प्रतिशत परिवार आवंटित मकानों से संतुष्ट थे। खेद का विषय है कि स्वच्छ शौचालयों और धुआं रहित चूल्हों के इस्तेमाल में प्रेरणा देने हेतु स्वयंसेवी संगठनों की कोई भागीदारी नहीं थी।

इन्दिरा आवास योजना के अतिरिक्त आवास और शहरी विकास निगम (हुडको) भी ग्रामीण क्षेत्रों में आवास निर्माण के लिए धन उपलब्ध कराता है। हुडको 1977-78 से ग्रामीण आवास योजनाओं के लिए धन की व्यवस्था करता है। 31 मार्च 94 तक हुडको 27.32 लाख ग्रामीण मकानों के लिए 1043.22 करोड़ रुपये का ऋण मंजूर कर चुका था।

आवास स्थलों का आवंटन

भूमिहीन ग्रामीण कृषि श्रमिकों को निःशुल्क आवास स्थल उपलब्ध कराने के लिए अक्तूबर 1971 में केन्द्रीय क्षेत्र में आवास स्थलों के आवंटन की योजना शुरू की गई थी। अप्रैल 1974 में यह योजना राज्य क्षेत्र को सौंप दी गई। बाद में इसे न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम और 20 सूत्री कार्यक्रम में शामिल कर लिया गया। इस योजना के अन्तर्गत मकान बनाने की जगह के विकास के लिए 500 रुपये और निर्माण सहायता के रूप में 2000 रुपये का अनुदान किया जाता है।

ग्रामीण आवास योजना

पिछले वित्त वर्ष (1993-94) के दौरान ग्रामीण आवास संबंधी एक नई योजना शुरू की गई है। इस योजना के लिए आठवीं योजना में 350 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। 1993-94 में इस मद के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों को 11 करोड़ रुपये प्रदान किए गए। इस वर्ष (1994-95) इस योजना के अन्तर्गत 30 करोड़ रुपये की राशि निर्धारित है। इस योजना के अन्तर्गत लाभार्थियों को आवास स्थलों के विकास तथा संबंधित सेवाओं के लिए 2700 रुपये की दर पर, मकानों के सुधार के लिए 6000 रुपये तथा

(शेष पृष्ठ 44 पर)

कहानी

विकलांग

योगेश चन्द्र शर्मा

बाबू रामदयाल से मेरा परिचय केवल इतना ही था कि वे एक विकलांग व्यक्ति हैं और एक स्थानीय दफ्तर में बाबू हैं। उनका बायां पैर, बहुत पहले ही शायद पोलियो का शिकार हो गया था। उन्हें मैं अक्सर दफ्तर जाते हुए या वहां से लौटते हुए देखता। वे साइकिल पर होते और अपने एक पैर से ही पैडल चलाते हुए भीड़भाड़ भरे रास्तों पर बड़े आराम से निकल जाते। अपने सधे हुए हाथों में हैंडल के साथ-साथ वे सीधी खड़ी एक बैसाखी भी थामे रहते, जो साइकिल से उतरने के बाद उनके पोलियो ग्रस्त पैर के स्थान पर, एक स्वस्थ पैर का काम देती। जब भी आवश्यकता होती, वे सहज रूप में अपनी साइकिल से उतरते और बैसाखी का सहारा लेते हुए, साइकिल को एक ओर रखकर, आगे बढ़ जाते। किसी कार्यवश जब एक बार उनके दफ्तर में जाना हुआ तो मेरा उनसे व्यक्तिगत परिचय भी हुआ, मगर अत्यन्त क्षणिक और केवल औपचारिक। इसके बाद, जब भी वे रास्ते में मिलते, मैं उनका अभिवादन करता और वे साइकिल के हैंडल को बड़ी खूबी के साथ संभालते हुए अपना एक हाथ उठाकर अभिवादन का उत्तर देते। कभी मेरा ध्यान उनकी ओर नहीं रहता तो वे स्वयं ही जोरों से मेरा नाम लेकर 'नमस्कार' कहते हुए और हाथ हिलाते हुए आगे बढ़ जाते। अभिवादन के समय उनके चेहरे पर हमेशा ही एक हल्की-सी सहज मुस्कान थिरकती रहती। मगर मैं उन्हें देखकर सहानुभूति और करुणा के भाव से भर जाता तथा लाख चाहते हुए भी उनकी मुस्कान के उत्तर में वैसी ही सहज मुस्कान उन्हें नहीं लौटा पाता।

एक दिन अचानक इच्छा हुई कि कुछ विकलांगों का साक्षात्कार लिया जाए और उसे किसी पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजा जाए। स्पष्ट ही इस इच्छा के पीछे उद्देश्य यही था कि विकलांगों की विवशतापूर्ण स्थिति के प्रति लोगों में सहानुभूति की भावना उत्पन्न हो ताकि समाज उनकी सुख-सुविधाओं का पर्याप्त ध्यान रख सके। इस इच्छा के साथ ही, मेरी स्मृति में जो सबसे पहला नाम उभरा, वह बाबू रामदयाल का ही था। मैंने उनके दफ्तर में टेलीफोन से सम्पर्क किया और उनसे सन्ध्या को कोई समय देने के लिए कहा, जब मैं उनसे उनके घर पर मिल सकूं। मेरी बात सुनकर टेलीफोन पर ही उनकी जोरों से हंसी सुनाई दी। वे कह रहे थे—"अरे भाई साहब, मैं कोई इतना बड़ा आदमी तो हूं नहीं, जिससे मिलने के लिए समय लेने की आवश्यकता पड़े। दफ्तर के समय के बाद जब भी जी चाहे, चले आइए। अकेला आदमी हूं, मगर रहता अक्सर घर पर ही हूं। लंगड़ा आदमी चहलकदमी करेगा भी तो कैसे?" इसके बाद, फिर वहीं जोरों का अट्टहास, सुनायी दिया और टेलीफोन बन्द हो गया।

सन्ध्या को लगभग छः सात बजे, मैं बाबू रामदयाल के घर जा पहुंचा। पता मुझे पहले से मालूम था ही। सो घर ढूंढ़ने में कोई दिक्कत नहीं हुई। मैंने दरवाजे को खटखटाया तो अन्दर से आवाज आयी—"सीधे अन्दर चले आइये। यहां कोई पर्दा नहीं है। सब कुछ खुला दरबार है।"

मैं आगे बढ़ चला तो निकट के ही एक कमरे में मूढ़े पर बैठे बाबू रामदयाल एक मोटी सी पुस्तक पढ़ रहे थे, मुझे देखकर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और पुस्तक को मेज पर रखकर, दूसरी ओर रखी अपनी बैसाखी के सहारे लपक कर उठ खड़े हुए। मैंने उन्हें रोकने की कोशिश की—"बैठे रहिए। क्यों तकल्लुफ कर रहे है?" मगर बाबू रामदयाल नहीं माने। उन्होंने गर्मजोशी से मेरा स्वागत किया और हाथ मिलाते हुए कहा—"आप इतनी दूर से चलकर यहां तक आएं और मैं क्या अपने मूढ़े से उठ भी नहीं सकता?"

फिर मुझे पास में ही रखे एक दूसरे मूढ़े पर बैठने का इशारा करते हुए वे वापिस अपने स्थान पर बैठ गए। मैंने इधर उधर दृष्टि डाली। एक साधारण मध्यम वर्ग के परिवार जैसा ही सब कुछ था। लेकिन सभी चीजें बड़ी सफाई और करीने से रखी हुई थीं। ऐसा नहीं लग रहा था कि वह मकान किसी 'बैचलर' का

हो। कम से कम किसी विकलांग बैचलर का तो मकान वह हरगिज नहीं लग रहा था। मैंने वस्तुस्थिति को स्पष्ट करने के लिए पूछा—'क्या यहां पर अकेले ही रहते हैं?"

बाबू रामदयाल ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया— "और कौन रहेगा मेरे साथ? माता-पिता तो किशोरावस्था में ही चल बसे थे। छोटा भाई शहर में है— मेडीकल कालेज में पढ़ रहा है। एक बहिन थी, सो पिछले वर्ष उसका विवाह कर दिया। अब तो अकेले में ही मस्ती छन रही है।"

बाबू रामदयाल के चेहरे पर ऐसा कोई भाव नहीं था, जो उन्हें दुःखी व्यक्ति प्रमाणित करता हो। बचपन में ही जिसके माता-पिता की मृत्यु हो गई और जिस पर एक बहिन तथा एक छोटे भाई का दायित्व हो, उसे जीवन में कितना संघर्ष करना पड़ा और वह भी अपनी विकलांग स्थिति के साथ, इसकी सहज कल्पना की जा सकती है। मगर बाबू रामदयाल के चेहरे पर मुझे वहां अद्‌भुत उत्साह दृष्टिगत हो रहा था। मैंने स्थिति को और अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से पूछा— "भाई बहिन का उत्तरदायित्व तो आप को ही वहन करना पड़ रहा होगा।"

उन्होंने तत्काल मगर सहज भाव से उत्तर दिया— "माता-पिता की मृत्यु के बाद वह तो होना ही था। फिर साधारण परिवार। किसी तरह की कोई जमा पूंजी नहीं। सब कुछ अपने बलबूते पर ही किया। दिन में अपने लायक कुछ छोटी-मोटी नौकरी करता और रात को पढ़ाई। इसी तरह गाड़ी आगे चलती रही। कभी धीरे-धीरे और कभी तेजी से। मगर इस परिस्थिति ने मेरी क्षमताओं को बहुत अधिक विकसित कर दिया। जीवन में आने वाली छोटी-मोटी बाधाओं का तो मेरी दृष्टि में अब कोई महत्व ही नहीं और बड़ी से बड़ी बाधा भी मुझे अब झुका नहीं पाती।"

बाबू रामदयाल ने अपनी किशोरावस्था की एक और घटना सुनाई। उन्हें अपने छोटे भाई की फीस व किताबों के लिए पचास रुपयों की आवश्यकता पड़ी। एक निकट के रिश्तेदार से बातचीत की। उसने पचास रुपये दे तो दिए, मगर बाकायदा एक स्टाम्प पेपर पर लिखवा कर। उसमें सूद की बात भी लिखी गयी थी। लेकिन, रिश्तेदार ने कहा कि यह सब तो कानूनी खानापूर्ति के लिए है, पर वह सूद लेंगे नहीं। बाद में, बाबू रामदयाल ने अपना कर्ज चुकाते समय न केवल पूरा मूलधन दिया, बल्कि सूद भी पूरी तरह चुका दिया और उस रिश्तेदार के साथ अपने संबंध सदैव के लिए तोड़ लिए।

बाबू रामदयाल अब कुछ गंभीर हो चले थे। मैंने अपनी उत्सुकता को व्यक्त करते हुए पूछा— "क्या आपको अपनी विकलांगता के कारण कोई असुविधा नहीं होती।"

मैं सोच रहा था कि मेरे इस प्रश्न पर बाबू रामदयाल शायद कुछ और अधिक गंभीर हो जाएंगे। मगर ऐसा नहीं हुआ। मेरी आशंका के विपरीत वे धीरे से मुस्कराए और बोले— "क्यों नहीं होती? जरूर होती है। मगर शारीरिक या मानसिक अभाव की ऐसी स्थिति किसके साथ नहीं है। सभी के साथ कुछ न कुछ होती है। किसी के साथ स्थायी होती है तो किसी के साथ अस्थायी। फिर मैं इसके लिए चिन्ता क्यों करूं? मेरा एक पैर खराब है। दूसरा तो ठीक है। फिर हाथ, नाक, आंख, कान, मुंह, मस्तिष्क सभी कुछ तो ठीक है। तब केवल एक पैर के खराब होने से कौन सा बहुत बड़ा संकट मुझ पर टूट पड़ा है। इस प्रकार की बीमारी या दुर्घटनाएं तो अक्सर होती ही रहती हैं।"

मुझे लगा, जैसे विकलांगता की चर्चा छेड़कर, मैंने बाबू रामदयाल के साथ कोई बड़ा गुनाह कर दिया हो। जिसकी वजह से मैं उन्हें सहानुभूति तथा दया का पात्र समझ रहा था, उसके बारे में उनके मन में कहीं कोई गांठ या हीनता की ग्रंथि थी ही नहीं। मुझे स्मरण हो आया स्वयं अपने ही बारे में वह दिन, जब मेरे पैर की एक नस में अचानक ही ऊपर से नीचे तक तेजी से दर्द उभरा था और एक मित्र ने उसे जांच परख कर आशंका व्यक्त की थी कि वह दर्द शायद मुझे हमेशा के लिए लंगड़ा बना देगा। तब मैं कितना नाराज हुआ था अपने उस मित्र पर और कितना रोया था अपनी उस विवशता पर। मुझे लगा, जैसे सहानुभूति का पात्र बाबू रामदयाल नहीं, स्वयं मैं हूं।

बाबू रामदयाल ने मुझसे चाय के लिए पूछा और चाय बनाने के लिए उठने भी लगे। मगर मैंने मना कर दिया। उन्हें व्यर्थ परेशानी से बचाने के लिए मैंने पेट संबंधी बीमारी का बहाना लेकर उन्हें कह दिया कि मैं चाय पीता ही नहीं। फिर भी वे उठे अवश्य। निकट ही आलमारी से एक प्लेट निकाली और उसमें कुछ बिस्कुट रखे। प्लेट को मेरे सामने रखते हुए बोले— "न सही चाय। बिस्कुट ही लीजिए मैं पानी और ले आता हूं।"

मैंने उन्हें रोकना चाहा– "क्यों व्यर्थ कष्ट कर रहे हैं?" मगर वे यह कहकर अपनी बैसाखी के सहारे आगे बढ़ गए– "मुझे कोई कष्ट नहीं होता।" लौटे तो उनके हाथ में पानी के दो गिलास थे। एक मेरे लिए और एक शायद स्वयं के लिए।

बिस्कुट उठाते हुए मैंने बातों का सिलसिला आगे बढ़ाया– "अभी यह कौन सी पुस्तक पढ़ रहे थे?"

उन्होंने पुस्तक उठायी और उसे मेरे हाथों में देते हुए बोले– "डाक्टर राधाकृष्णन की है, भारतीय दर्शन पर।"

उनकी रुचि को देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। बोला– "लगता है, दर्शनशास्त्र में आपकी बड़ी रुचि है।"

उन्होंने अपनी सहज मुस्कान के साथ उत्तर दिया– "हां रुचि तो है ही। मगर उसके साथ इस वर्ष दर्शनशास्त्र में एम0 ए0 करने की भी सोच रहा हूं। सो, इस समय तो उसी संदर्भ में पुस्तक पढ़ रहा था।"

बाबू रामदयाल ने यह भी बतलाया कि बी0 ए0 तक उन्होंने सभी कक्षाएं प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की हैं और वे नहीं चाहते कि एम० ए० में उनका यह रिकार्ड टूटे। उसके बाद उनका विचार भारतीय दर्शन के ही किसी पहलू पर डाक्टरेट करने का है।

उनकी लगन और उत्साह को देखकर मैं चमत्कृत था। इससे पहले, बाबू रामदयाल से जितना मेरा परिचय था, उसके आधार पर तो मुझे इसका आभास तक नहीं था कि वह इतनी प्रतिभा और विलक्षण आत्म-विश्वास वाले व्यक्ति हैं। बाबू रामदयाल में, मुझे ऐसी कोई बात नजर नहीं आ रही थी, जिसके लिए उन पर सहानुभूति या करुणा प्रकट की जाए। इसके विपरीत उनके सामने मैं स्वयं अपने आपको बड़ा बौना महसूस कर रहा था।

बात आगे बढ़ाने के लिए मुझे कोई विषय नहीं मिल रहा था। फिर भी अपने आपको थोड़ा हल्का फुल्का बनाने के विचार से, अचानक ही मेरे मुंह से निकल पड़ा– "अभी कब तक अकेले और रहने का विचार है?"

प्रश्न मुंह से निकल तो गया लेकिन उस पर मैंने अपने आपको बड़ा कोसा। अपाहिज व्यक्ति को भला कौन अपनी लड़की देना चाहेगा। स्पष्ट ही मेरा प्रश्न बड़ा बेहूदा और अशिष्ट था और मैं प्रतीक्षा कर रहा था कि प्रायः मुस्कान बखेरने वाले बाबू रामदयाल अब क्रोधित मुद्रा धारण कर लेंगे अथवा कम से कम उदास तो हो ही जाएंगे। मगर हुआ इसके बिल्कुल विपरीत। वे जोरों से हंसे और बोले– "अधिक दिन नहीं। बस केवल कुछ महीने। विवाह की बात पक्की हो गई है। तैयारी कर लीजिए। आपको भी बारात में चलना होगा।"

मुझे आश्चर्य हुआ। उनके अट्टहास के जवाब में चेहरे पर एक औपचारिक मुस्कान की चिपकी लगाते हुए मैंने पूछा– "कहां तय हुआ विवाह?"

"यहीं पास के ही एक गांव में"– वे बोले– "और आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि लड़की भी मेरी ही तरह अपंग है। बचपन में एक दुर्घटना के कारण उसकी आधी टांग काटनी पड़ी थी। मेरी बायीं टांग गायब है और उसकी दायीं। सो सही अर्थों में वह मेरी वामांग होगी और मैं उसका दायां अंग।" इतना कहकर वे जोरों से हंस पड़े और इस बार मैंने भी उनका खुलकर साथ दिया। उनके जैसे आत्म-विश्वासी और जिन्दादिल इंसान से अधिक समय तक अछूता रहना संभव भी नहीं था।

10/611, मानसरोवर,
जयपुर-302020

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता :

व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाऊस
नई दिल्ली-110001

एक प्रति : पांच रुपये **वार्षिक चंदा : 50 रुपये**

बचत को प्रोत्साहित करती है महिला समृद्धि योजना

डा० अजय जोशी

"बूंद-बूंद से घड़ा भरता है" कहावत बचत के संदर्भ में शत प्रतिशत सही है। छोटी-छोटी बचतों के माध्यम से बड़ी पूंजी का निर्माण किया जा सकता है। बचत की दिशा में महिलाएं अधिक प्रभावी भूमिका का निर्वाह कर सकती हैं। सरकार समय-समय पर समाज के सभी वर्गों के लिए ऐसी योजनाएं बनाती रहती है। जिनके माध्यम से बचत की आदत को प्रोत्साहित किया जा सके।

ग्रामीण महिलाओं में बचत की प्रवृति को प्रोत्साहित करने हेतु केन्द्रीय व राज्य सरकारें सतत प्रयत्नशील रही हैं। इन्हीं प्रयत्नों की श्रृंखला में कुछ समय पूर्व महिला समृद्धि योजना प्रारंभ की गयी। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं में बचत की भावना का विकास करना है। इस योजना के अन्तर्गत 18 वर्ष और उससे अधिक आयु की प्रत्येक ग्रामीण महिला अपना खाता खोल सकती है यह खाता ग्रामीण क्षेत्रों के डाकघरों में खोला जा सकता है।

इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण महिला कम से कम चार रुपये से अपना खाता खोल सकती है। इस खाते में एक वर्ष में अधिक से अधिक 300 रुपये तक जमा किये जा सकते हैं। इस योजना के अन्तर्गत पास बुक भी प्रत्येक खाताधारी को दी जाती है जिसमें जमा राशि की प्रविष्टि रहती है।

खाते में सामान्यतः 12 माह तक राशि जमा रखनी आवश्यक है लेकिन वर्ष में दो बार कम से कम 20 रुपये तथा आगे 4 रुपये के गुणक में राशि निकाली जा सकती है। इस योजना के अन्तर्गत 300 रुपये 12 महीनों तक जमा रहने पर सरकार 25 प्रतिशत प्रोत्साहन राशि देती है। इस प्रकार 300 रुपये 12 माह तक जमा रहने पर 375 रुपये दिये जाते हैं।

इस खाते में भी नामांकन की सुविधा उपलब्ध है। महिला किसी का भी नामांकन कर सकती है।

पूरे देश में लागू इस योजना के अन्तर्गत कोई भी ग्रामीण महिला यदि खाता खुलवाना चाहे तो गांव के डाकघर के पोस्ट मास्टर, गांव के सुपरवाईजर, आंगन वाड़ी कार्यकर्ता या ग्राम सेविका के पास विस्तृत जानकारी ले सकती है। ये सभी लोग खाता खुलवाने में उसकी सहायता भी करते हैं।

ग्रामीण महिलाओं में बचत की आदत को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से यह योजना काफी लोकप्रिय हो रही है। इस योजना के अन्तर्गत अब तक 72 लाख महिलाएं अपने खाते खुलवा चुकी हैं। इन खातों में कुल जमा राशि लगभग 66 करोड़ रुपये है।

इस योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा निर्धारित प्रोत्साहन राशि प्रचलित ब्याज दरों से काफी अधिक है। यह योजना घरेलू ग्रामीण महिलाओं को अपनी आय में से कुछ भाग नियमित रूप से बचा कर डाक घर में जमा करवाने हेतु प्रेरित करने की दृष्टि से काफी उपयोगी है। इस योजना के व्यापक प्रचार प्रसार करने की आवश्यकता है ताकि अधिकाधिक महिलाएं इस योजना के अन्तर्गत लाभान्वित हों। इस योजना के अन्तर्गत जमा राशि की अधिकतम सीमा वर्तमान परिवेश में कम प्रतीत होती है इसलिए अधिकतम जमा राशि कम से कम 500 रुपये कर दी जानी चाहिये तथा प्रोत्साहन राशि 25 प्रतिशत बनाये रखनी चाहिये। इस योजना का दायरा बढ़ा कर शहरी गरीब महिलाओं को इस योजना के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाना चाहिये।

सम्पादक, मरु व्यवसाय चक्र,
पारीक चौक,
बीकानेर-334005 (राज.)

(पृष्ठ 17 का शेष)

ग्रामीण आवास...

ने उसका उपयोग ही नहीं किया। स्वयंसेवी संस्थाएं इन मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ विभिन्न पहलुओं पर इस कार्यक्रम की निगरानी भी कर सकती हैं। किसी भी योजना के परिणाम तत्काल नहीं आते हैं लेकिन अगर योजना का क्रियान्वयन ढंग से हो तो लक्षित समूह के अलावा अन्य लोग भी उससे काफी कुछ सीख सकते हैं। अगर गांव के सबसे गरीब लोगों को नये मानकों के अनुरूप बेहतर मकान मिलेंगे तो वे बाकी गांव के लिए भी प्रेरणा बनेंगे। इन सुझावों को मद्देनजर रख स्वयंसेवी संगठन गांवों में जनांदोलन की भूमिका तैयार कर सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

5/1 आई.एन.एस. बिल्डिंग,
रफी मार्ग, नई दिल्ली-110001

आवास समस्या एवं समाधान

डा० हरे कृष्ण सिंह

संसार के सभी प्राणियों को वायु, जल और भोजन की आवश्यकता महसूस होती है। प्राणियों में श्रेष्ठ जीव मानव है जो चेतनशील है। उसे वायु, जल, भोजन और वस्त्र के बाद आवास की भी आवश्यकता होती है। सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य गुफाओं, कंदराओं, जर्जरित झोपड़ियों में अपना जीवन व्यतीत करता था। आज के वैज्ञानिक युग में आवास जीवन-स्तर का मापदण्ड होने के साथ-साथ सम्मानजनक आराम करने का स्थल तथा कार्यक्षमता में वृद्धि करने वाला गोमुखी है। हमारे जीवन में आवास को प्राचीन काल से ही महत्ता दी जा रही है और आवासहीन मनुष्यों के कष्टों का उल्लेख भी किया गया है। घरहीन मनुष्य का जीवन पशु से बेहतर नहीं माना गया है। 'बांझ नहीं जाने प्रसूति की पीड़ा' कहकर हम यह कहना चाहते हैं कि बाग-बगीचों, पटरियों, प्लेटफार्मों, गंदी व तंग बस्तियों तथा बेघर लोगों की अन्दरूनी जिन्दगी कितनी बेबस, लाचार और बीमार होती है, इसका ठीक-ठीक आकलन करना आसान नहीं है। आज विश्व के सामने आवास की समस्या विकराल होती जा रही है इसके साथ ही अक्तूबर माह के प्रथम सोमवार को मनाये जाने वाले विश्व आवास दिवस की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है।

आवास समस्या

एक अनुमान के अनुसार दुनिया का हर पांचवां आदमी बेघर है। योजना आयोग का अनुमान है कि भारत की जनसंख्या का पांचवां भाग झुग्गी-झोपड़ियों में रहने को विवश है। इसके अलावा जो मकान हैं उनमें 75 प्रतिशत मकान ऐसे हैं जिनमें खिड़कियां नहीं हैं और 80 प्रतिशत मकानों में शौचालय नहीं है। सड़क, पानी, बिजली की बात तो छोड़िए अधिकांश भारतवासी मकान, जल, शौचालय जैसी आवश्यक सुविधाओं से वंचित हैं। आश्रय-स्थल को आवास मानना विवेकहीनता का परिचायक होगा, कारण विकास का सीधा सम्बन्ध आवास से होता है। बढ़ती आबादी, शहरीकरण, कीमतों में वृद्धि, पूंजी विनियोग जैसी अनेकानेक बाधक तत्वों ने आवास समस्या को बढ़ाने में अहम भूमिका अदा की है, जबकि प्रत्येक मनुष्य अपना घर बनाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। फिर भी सम्पूर्ण भारत में मकानों की कमी और मकानों का असंतोषजनक स्तर बरकरार है। इन समस्याओं के समाधान का प्रयास भी लगातार किया जा रहा है।

समाधान के प्रयास

भारतीय संविधान में आवास समस्या पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया लेकिन पंचवर्षीय योजनाओं में इस समस्या को समाज कल्याण के परिप्रेक्ष्य में देखा गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही आवास समस्या पर ध्यान दिया गया है। औद्योगिक आवास योजना, कम आय वर्ग के लिए आवास योजना तथा विभिन्न प्रकार के श्रमिकों के लिए गृह योजना का श्रीगणेश प्रथम योजनाकाल से ही किया गया जो सरकारी अनुदान पर आश्रित रहा है। इसी आलोक में सन् 1954 में राष्ट्रीय भवन संगठन की स्थापना की गई। द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में आवासीय योजना की शुरुआत झुग्गी-झोपड़ियों का सफाया और विकास अभियान से की गयी। बागान श्रमिकों, ग्रामीण आवास एवं भू-अर्जन तथा विकास योजनाओं के अलावा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और ग्रामीण क्षेत्र के पिछड़े वर्ग के लिए कई कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया गया। भारतीय जीवन बीमा निगम ने मध्यवर्गीय आय वालों को भवन निर्माण के लिए ब्याजमुक्त ऋण की व्यवस्था शुरू की और राज्य सरकारों ने अपने निम्न वेतनभोगी कर्मचारियों के लिए किराये का मकान तैयार करने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी। तृतीय योजना-काल में इन कार्यक्रमों को चालू रखते हुए आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों के लिए नया कार्यक्रम बनाया गया। कम कीमत में मकान निर्माण के लिए शोध एवं सामग्री व्यवस्था का भरपूर प्रयास चौथी योजनाकाल में किया गया। पांचवीं योजनाकाल में पूर्व घोषित एवं क्रियान्वित कार्यक्रमों का सफल कार्यान्वयन किया गया। छठी एवं सातवीं योजना अवधि में शहरी आवास समस्या का समाधान करते हुए ग्रामीण आवास समस्या पर विशेष ध्यान दिया गया। अब ग्रामीण भूमिहीनों के

लिए गृह-स्थल और गृह हेतु सहायता, कम लागत में मकान बनाने की तकनीक, स्वयं सहयोग से घर बनाने हेतु प्रोत्साहन आदि हमारी योजनाओं का ध्येय बन गया है।

शहरी एवं ग्रामीण बेघरों को अपना घर देने के उद्देश्य से कई कार्यक्रम संचालित किये गये हैं जिनमें सहयोग करने के लिए राष्ट्रीय सहकारी आवास संघ, आवास एवं शहरी विकास निगम, राष्ट्रीय आवास बैंक, राष्ट्रीय भवन संगठन, आवास बोर्ड (राज्य स्तर), सेन्ट्रल बिल्डिंग रिसर्च इन्स्टीच्यूट, जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम के अलावा कई सरकारी व निजी वित्तीय संस्थाएं तैयार हैं। शहरों में गरीबों को मकान उपलब्ध कराने के लिए नेहरू रोजगार योजना एवं ग्रामीण गरीबों के लिए भवन उपलब्ध कराने के लिए इन्दिरा आवास योजना तथा बीस-सूत्री कार्यक्रम क्रियाशील हैं।

योजनागत परिव्यय एवं विनियोग

पहली योजना में आवास के लिए 38.50 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान किया गया। द्वितीय योजना में 120 करोड़ रुपये, तृतीय योजनावधि में 202 करोड़ रुपये, चौथी योजनाकाल में 237.03 करोड़ रुपये, पांचवीं योजना में 600.92 करोड़ रुपये, छठी योजना में 1490.87 करोड़ रुपये एवं सातवीं योजना में 2458.21 करोड़ रुपये खर्च करने का लक्ष्य रखा गया। इसी प्रकार पहली योजना में आवास पर कुल विनियोग 1,150 करोड़ रुपये का था, जो अर्थतंत्र के कुल विनियोग का मात्र 9 प्रतिशत रहा।

उपलब्धियां

स्वाधीनता के बाद योजनागत प्रयास, परिव्यय एवं विनियोग की प्राप्ति कम नहीं है। कारण 1950-51 से दिसम्बर 1979 तक 2.05 लाख मकान बागान श्रमिकों एवं औद्योगिक श्रमिकों के लिए बनाये गये। कम आय प्राप्त करने वालों के लिए कुल 3.36 लाख तथा अन्य विविध योजनाओं में उच्च वर्ग के लिए कुल 1.42 लाख भवन निर्मित किये गए। ग्रामीण क्षेत्रों में करीब 77 लाख गृह स्थल वितरित किये गये और 5.6 लाख मकान गृह स्थल सह गृह निर्माण योजना के तहत बनाये गये। छठी योजनाकाल में विभिन्न कार्यक्रमों के तहत कुल 9,06,133 मकानों का निर्माण कराया गया जबकि सातवीं पंचवर्षीय योजना में केवल सहकारी गृह निर्माण योजना में 1087 करोड़ रुपये का विनियोग करके 23 लाख मकान बनाये गये। बीस-सूत्री कार्यक्रम के अधीन 1.67 लाख मकान कम आय वर्ग तथा 7.14 लाख मकान आर्थिक कमजोर वर्ग के लिए बनाए गए हैं। इन्दिरा आवास योजना के अंतर्गत अब तक 14.42 लाख मकान बनाए गए। राष्ट्रीय भवन संगठन ने 1991 में 3.1 करोड़ मकान की कमी का अनुमान लगाया था। दूसरी ओर एक अनुमान के अनुसार सन् 2001 तक 6.44 करोड़ नये मकानों की आवश्यकता होगी। वास्तव में मकानों की कमी आने वाली योजनाओं के लिए एक गम्भीर समस्या बनने वाली है।

आठवीं योजना

आठवीं पंचवर्षीय योजना के प्रावधानों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश में करीब 7 करोड़ 90 लाख भवनों के निर्माण की आवश्यकता है। आवास की विषम परिस्थिति को देखते हुए सरकार ने आठवीं पंचवर्षीय योजना में आवास निर्माण के कार्य को प्राथमिकता दी है। सातवीं योजना में 2458.21 करोड़ रुपये की अपेक्षा इस बार आठवीं योजना में 6377 करोड़ रुपये खर्च करने की योजना है। सन् 2000 तक सभी को अपना घर देने के लिए आवासीय क्षेत्र में भारी पूंजी निवेश का लक्ष्य रखा गया है। कुल 77,496 करोड़ रुपये का पूंजी निवेश आंका गया है। इसमें निजी क्षेत्र से 69,746 करोड़ रुपये और सार्वजनिक क्षेत्र से 7,750 करोड़ रुपये का निवेश सम्भावित है। आवास समस्या के समाधान हेतु होने वाले निवेश का 90 प्रतिशत निजी क्षेत्र के माध्यम से होना है। योजना के आधार-पत्र में विभिन्न आय वर्ग के लोगों की आवास सम्बन्धी आवश्यकता, खासकर निम्न आय वर्ग के व्यक्तियों, महिलाओं और लाभ से वंचित वर्गों यथा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग आदि की आवासीय जरूरतों की पूरा करने हेतु जोर दिया गया है। इस हेतु सामाजिक आवास योजनाओं पर बल दिया जा रहा है जिनमें ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, हुडको की भूमिका को सुदृढ़ करना, बेघरों के लिए घर, तकनीकी हस्तांतरण, आवास सूचना प्रणाली, इन्दिरा आवास योजना तथा सरकारी कर्मचारियों हेतु आवास योजनाएं शामिल हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आठवीं योजना में आवास समस्या से निपटने के लिए निश्चित राष्ट्रीय आवास नीति की घोषणा की गयी है।

निष्कर्ष

निःसंदेह स्वाधीनता के बाद भारत के शहरों एवं गांवों में फुटपाथों पर जीवन बसर करने वाले नागरिकों के कार्यक्षमता में वृद्धि करने, सर्दी-गर्मी एवं वर्षा से बचाकर उन्नत जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान करने हेतु केन्द्र व राज्य सरकार की ओर से बेघरों को घर तथा असंतोषजनक घरों को संतोषजनक आवास बनाने के लिए सामाजिक व संस्थागत प्रयास किये गए हैं। सफलता भी मिली लेकिन बढ़ती जनसंख्या, कमरतोड़ महंगाई, तकनीक का अभाव एवं सामाजिक व्यवस्थावश समस्या का निदान नहीं हो सकता। यह भी सर्वमान्य सत्य है कि आहार समस्या की तरह आवास समस्या पर ध्यान नहीं दिया गया। ऐसे सरकारी योजनाओं में यह प्राथमिकता का विषय अवश्य रहा है। सामाजिक रूप से मंदिर, धर्मशाला व अनाथालय का निर्माण भी घर हीन को घर उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से किया जाता रहा है। भारतीय आवास समस्या में बाढ़, आगजनी, आंधी, भूकम्प जैसे प्रकृति प्रकोप के साथ-साथ विदेश तथा देश के विभिन्न भागों से पनाह लेने हेतु आये व्यक्तियों से हमेशा बढ़ोत्तरी ही हो रही है। सरकारी कोष में उपलब्ध संसाधनों के अनुसार सरकार का प्रयत्न सही दिशा में हो रहा है लेकिन इस समस्या के समाधान के लिए हम सबको पहल करने की आवश्यकता है।

सुझाव

आवास समस्या के कारण गांव से लेकर शहर तक का सामाजिक संस्कृति नाश हो रहा है तथा भारत का भविष्य अपने को सम्भाल नहीं पा रहा है। गांवों में खर-पुआल, बांस और कच्ची मिट्टी का बना एक कमरा एक परिवार के लिए सोने, रहने, भोजन, पढ़ने के साथ-साथ जानवर-गाय, बकरी, भैंस व बैल पालने के लिए इस्तेमाल होता है। क्षमता से अधिक लोगों के निवास के लिए प्रयुक्त यह कमरा बच्चों को प्रारम्भ से ही हीन भावना का शिकार बनता है। दूसरे तरफ शहरों में खासकर किराये के मकानों में भी बच्चों को कुंठित होने का भरपूर वातावरण मिलता है, कारण खेलने-कूदने के स्थान की कमी, मकान मालिक का रवैया, वायु, जल, बिजली के अभाव से बच्चे आत्मकेन्द्रित हो जाते हैं। इससे हमारी सामाजिक संस्कृति प्रदूषित हो रही है। आशय स्पष्ट है कि भारत का भविष्य एक-दूसरे की सहायता, बाह्य मनोरंजन, मिलजुल कर काम करना तथा सुख-दुःख का साथी खोता जा रहा है। ऐसी स्थिति में आवास समस्या समाधान चाहती है। इसके लिए हमारा सुझाव होगा कि आवास निर्माण के व्यय तथा विनियोग को सभी प्रकार के करों से मुक्त रखने की व्यवस्था यथाशीघ्र की जानी चाहिए। धर्मशाला, अनाथालय, किराये के मकान, गरीबों के लिए मुफ्त मकान बनाने वालों के लिए सरकारी तौर पर कुछ सुविधा मुहैया कराना अनिवार्य है। पहला मकान में विनियोजित राशि को आयकर से मुक्त रखा जाए। दूसरा प्रत्येक वर्ष अक्तूबर के प्रथम सोमवार को मनाये जाने वाले विश्व आवास दिवस को ऐसे व्यक्तियों को पुरस्कृत किया जाना चाहिए जिन्होंने आवास समस्या के निदान हेतु सक्रिय सहयोग किया। तीसरा बेघरों को घर देने वाले व्यक्तियों को भ्रमण-काल में सम्पूर्ण देश में सरकारी आवासीय होटलों में मुफ्त रहने की व्यवस्था की जाए। जनसंख्या नियंत्रण, गरीबी उन्मूलन और बेरोजगारी निवारण के लिए आम सहभागिता की भावना तीव्र करने की आवश्यकता भी आवास समस्या के लिए उतनी ही प्रासंगिक लग रही है जितनी कीमतों पर नियंत्रण। आग, आंधी, वर्षा से बचने वालों मकानों का निर्माण सस्ता, सुन्दर और टिकाऊ के सिद्धान्त पर किया जाना चाहिए जैसे– आग से बेअसर फूस की छत आदि। कम मूल्य की तकनीक का आशय घास-फूस का छप्पर से नहीं लिया जाना चाहिए। इसके साथ ही आवास निर्माण को उद्योग का दर्जा दिया जाए जिससे एक ओर आवास समस्या को सुलझाने में मदद मिलेगी और दूसरी तरफ निपुण एवं गैर निपुण व्यक्तियों को रोजगार मिलने की संभावना बढ़ेगी। अन्त में लेकिन कम महत्व की बात यह नहीं है कि योजना बनाकर उसे पूरी दृढ़ता से लागू किया जाए तो सफलता अवश्य मिलेगी। आवास सेमस्या से निपटने के लिए हमें यह याद रखना होगा– 'हम उनकी मदद करें जो घरविहीन हैं।'

ग्रामीण विकास कार्यक्रम : एक मूल्यांकन

डा० अलका सिंह

विकासशील देशों में विकास की समस्या सबसे अधिक है क्योंकि इन देशों की एक विशाल जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। सामाजिक-आर्थिक रूप से उपेक्षित इन क्षेत्रों में निर्धनता और पिछड़ापन एक प्रमुख समस्या है। भारत जैसे ग्रामीण जनसंख्या प्रधान देश में ग्रामीण विकास एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। ग्रामीण भारत में लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। अधिकांश ग्रामीण समुदाय निर्धनता से ग्रस्त है। वे अशिक्षा एवं अज्ञानता की संकीर्णता से समस्याओं को हल कर पाने में असमर्थ दिखायी देते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकार ने राज्य को कल्याणकारी राज्य घोषित किया तथा उसने विकास के आधारभूत बिन्दु अर्थात गांवों की ओर ध्यान दिया। सरकार ने ग्रामीण विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत ग्रामीण लोगों की सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति, कृषि विकास, रोजगार, निम्न वर्ग के लोगों की आय में वृद्धि, स्वास्थ्य और शिक्षा, संचार व्यवस्था और आवास सुविधा जैसे कार्यक्रमों को सम्मिलित किया है। इस प्रकार ग्रामीण विकास ग्रामीण जीवन के प्रमुख आर्थिक पहलुओं को छूने वाला एक देशव्यापी कार्यक्रम बन गया है।

ग्रामीण विकास की अवधारणा

ग्रामीण विकास का तात्पर्य मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले गरीब एवं कमजोर वर्ग के लोगों का जीवन स्तर ऊंचा उठाना है। इस प्रक्रिया में आर्थिक एवं सामाजिक दोनों पहलुओं का समावेश होता है। भारतीय सन्दर्भ में ग्रामीण विकास एक जटिल समस्या है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले गरीब लोगों के जीवन-स्तर को सुधारने के लिए व्यापक गतिविधियों को सम्मिलित किया गया है। ग्रामीण जनता के विकास-पहलूओं को पांच समूहों में विभक्त किया जा सकता है:

1. कृषि, भूमि सुधार, पानी की व्यवस्था, परिवहन और कृषि संबंधी गतिविधियां इत्यादि जो कि ग्रामीण जनसंख्या की जीविका का साधन हैं।

2. लघु और मध्यम स्तर पर कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देना जो कि श्रमिकों और अन्य लोगों को कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त व्यवसाय दे सकें।

3. आवास, सड़कें, इंजीनियरिंग और टेक्नालाजी को एक कार्यशक्ति के रूप में लेना।

4. शिक्षा के अन्तर्गत प्राथमिक, अनौपचारिक और प्रौढ़ शिक्षा का जनसंख्या के आयु-वर्ग के आधार पर प्रबन्ध करना।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास वह कार्यक्रम है, जिसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों के निम्न आय वर्ग के लोगों के सामाजिक-आर्थिक स्तर को क्षेत्रीय संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग द्वारा उन्नत बनाया जाए।

ग्रामीण विकास कार्यक्रम

स्वतन्त्र भारत में ग्रामीण क्षेत्रों का जो ढांचा है उसमें आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए कृषि कार्य में सुविधा, लगान की छूट, शिक्षा व स्वास्थ्य की उचित व्यवस्था और समानता का अधिकार आदि अनेक प्रकार की कल्याणकारी योजनाओं की पूर्ति की आशा सरकार से ही की जाने लगी। सरकार ने ग्रामीण विकास नीति के अन्तर्गत ग्रामीण समुदायों को, साधनों की उपलब्धता के अनुसार विकास कार्यक्रमों का लाभ पहुंचाने का प्रयास किया। स्वतन्त्रता से पहले गांवों में उत्पादन के प्रमुख साधनों पर जमींदारों, सामंतों और बड़े भू-पतियों का स्वामित्व था। गांव में ही किसानों का शोषण रोकने के लिए सबसे पहला कदम जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करके उठाया गया। इस कदम से किसानों, मजदूरों और पिछड़े वर्गों के विकास के लिए नई योजनाएं लागू करने का मार्ग प्रशस्त हो गया। जमींदारी उन्मूलन के साथ ही भूमि के उचित वितरण के लिए भूमि सुधार आन्दोलन चलाया गया। विभिन्न राज्यों में वहां की भूमि व्यवस्था के आधार पर भिन्न-भिन्न सुधार कानूनों को पास किया गया।

1950 और 60 के दशक में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण में औचित्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया गया। विकास के लिए एजेन्सियां बनाई गईं। कार्यक्रमों को लागू करने की दिशा में प्रशासनिक सुधार की प्रक्रिया आरम्भ की गई। अनेक प्रकार के अनुदान, सरकारी ऋण, विकास पत्र आदि जारी किए गए। कृषि, उद्योग, यातायात, शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में सुधार व विकास

का प्रयास आरम्भ किया गया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम एवं पंचायती राज संस्थाओं को बुनियादी स्तर पर सामाजिक और आर्थिक विकास एवं लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व माना गया। 1957 में बलवन्त राय मेहता समिति की सिफारिशों के बाद महाराष्ट्र और गुजरात राज्य ने पंचायती राज की तीन स्तर वाली संरचना को अपनाया, जिसमें गांव को मूल इकाई एवं दूसरे स्तर पर विकास खण्ड तथा तीसरे स्तर पर जिले को रखा गया। अधिकांश राज्यों में राजनीतिक तथा प्रशासनिक हस्तक्षेपों के कारण पंचायती राज व्यवस्था को अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी। कई राज्यों में पंचायतें भंग हो गई और कुछ राज्यों में पंचायतों के चुनाव ही नहीं कराए गए।

1970 के दशक में राज्य द्वारा गरीब वर्गों और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने के लिए क्षेत्रीय स्तर पर अनेक कार्यक्रम चलाये गए। इन कार्यक्रमों में विशेष बल कमजोर वर्गों के लोगों की ओर दिया गया है, जिनका उद्देश्य इनकी आर्थिक गतिविधियों को सुनियोजित व्यवस्था से जोड़ना था। पंचवर्षीय योजनाओं तथा सरकारी स्तर पर ग्रामीण विकास के लिए समय और समाज की आवश्यकतानुसार अनेक कार्यक्रम कार्यान्वित किये गये। ग्रामीण विकास की कुछ योजनाएं और कार्यक्रम केन्द्र सरकार द्वारा, कुछ राज्य सरकारों द्वारा व कुछ केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा संयुक्त रूप से चलाये गए। केंद्र द्वारा चलाई जा रही योजनाओं में भी राज्य सरकारों का सहयोग लिया गया। पंचवर्षीय योजनाओं तथा सरकारी स्तर पर ग्रामीण विकास के अनेक कार्यक्रम आवश्यकतानुसार कार्यान्वित किये गये। ग्रामीण विकास के लिए अपनाये गये कुछ प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार हैं –सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952), खादी एवं ग्रामीण उद्योग कार्यक्रम (1957), पैकेज कार्यक्रम (1960), गहन जिला कृषि कार्यक्रम (1964), जनजाति क्षेत्र विकास कार्यक्रम (1972), न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (1972), काम के बदले अनाज कार्यक्रम (1977), मरुभूमि विकास कार्यक्रम (1977), ट्राइसेम (1979), समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (1979), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (1980), नया बीस सूत्रीय कार्यक्रम (1982), ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम (1983), ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (1983), जवाहर रोजगार योजना (1989), वर्तमान समय में राज्य द्वारा प्रायोजित समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं जवाहर रोजगार योजना ग्रामीण क्षेत्रों में गरीवी उन्मूलन के प्रमुख कार्यक्रम हैं।

मूल्यांकन

भारत के विगत 48 वर्षों के विकास के प्रयास को कई दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। यदि ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालें तो यह स्पष्ट होता है कि कार्यक्रमों, नीतियों एवं योजनाओं ने ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक, आर्थिक, एवं शैक्षणिक स्तर में सुधार किया है। गांवों में शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली एवं सड़कों की सुविधाओं तथा उद्योगों के विस्तार में वृद्धि हुई है। ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है, लेकिन विकास कार्यक्रमों के लाभ से ग्रामीण क्षेत्रों का एक बड़ा तबका अभी भी वंचित है। योजनाबद्ध विकास के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन पर बड़ी मात्रा में धनराशि खर्च करने के बाद भी कोई अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर आठवीं पंचवर्षीय योजना तक ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता को दूर करने के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए गए। इन कार्यक्रमों से मूल प्रश्न यह उठता है कि कितने गरीब अभाव की जिन्दगी से ऊपर उठ सके हैं? कार्यक्रमों में एक बार जिस व्यक्ति को लाभान्वित कर दिया जाता है, उसे सरकारी आंकड़ों में गरीबी की रेखा से ऊपर उठा हुआ मान लिया जाता है। अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ कि जिन व्यक्तियों को लाभान्वित किया जाता है, वह तब तक गरीबी की रेखा से ऊपर रहता है जब तक भैंस दूध देती है। लेकिन जब वह दूध देना बन्द कर देती है, तो उसे एक तरफ तो उसे बैंक की किश्त जमा करनी होती है और दूसरी तरफ बिक्री के लिए दूध नहीं होने के कारण वास्तव में आय का साधन भी नहीं रहता। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का प्रयास यह प्रदर्शित करता है कि कार्यक्रम के अन्तर्गत दिए जाने वाले मवेशी एवं अन्य दूसरी सम्पति लघु स्तर पर ही मुहैया कराए जा सके हैं। इससे केवल एक सीमित संख्या ही सहायता पा सकी है। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का आकर्षण सब्सिडी ही होता है। यह सच्चाई है कि ग्रामीण गरीब आय चाहता है, भूमि, जानवर इत्यादि नहीं। सरकार और योजनाकारों को इसके बारे में सोचना चाहिए कि अधिक सार्थक लाभकारी विकल्प क्या हो? समान रूप से अधिसंरचना के विकास का अभाव है जैसे सड़क, पानी की पूर्ति, विद्युतीकरण, नियमित बाजार, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, स्कूल इत्यादि। विकास कार्यक्रमों में प्रायः इन कमियों का उल्लेख किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र के अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष की नवीनतम

रिपोर्ट (आई. एफ. ए. डी. रिपोर्ट : 1992) के अनुसार गरीबी और उसके निदान का चक्र तीन आधारभूत कारणों पर केन्द्रित रहता है। सबसे पहले तो ग्रामीण विकास की प्रक्रिया ही गलत है। यह गरीबी उन्मूलन के नाम पर शुरू होती हैं और इसी के नाम पर खत्म भी हो जाती है। दूसरे गरीबी को आवश्यक रूप से समस्या के तौर पर देखा जाता है। तीसरे, गरीब लोग ही अपनी शक्ति का इस्तेमाल करते हुए अपनी स्थिति में परिवर्तन कर सकते हैं। ग्रामीण निर्धनों को यदि ऋण के साथ तकनीकी ज्ञान भी उपलब्ध कराया जाए तो इससे उनकी स्थिति सुधारने में महत्वपूर्ण मदद मिल सकती है।

निष्कर्ष

यद्यपि गांवों के लिए शुरू किए गए विभिन्न कार्यक्रमों से गांवों में विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ है, किन्तु विकास की दौड़ में गांव बहुत ही धीमी गति से आगे बढ़ रहे हैं। ग्रामीण विकास से सम्बन्धित जितनी भी योजनाएं, कार्यक्रम और नीतियां बनायी गयी हैं, वे सब ग्रामीण विकास के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकी हैं। इन कार्यक्रमों के लक्ष्यों एवं उपलब्धियों में काफी अन्तर दिखाई देता है। यह आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक वेतनभोगी रोजगार सुविधाओं का सृजन किया जाए। गरीबों को विकास की मुख्यधारा में लाने, गरीबी को कम करने और कमजोर वर्गों के रहन-सहन के स्तर को ऊपर उठाने के लिए ग्रामीण विकास की नीतियों, वितरण व्यवस्था, संगठन, प्रक्रिया एवं सार्वजनिक सेवा की उपयुक्तता पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है। राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों, क्षेत्रीय कर्मचारियों एवं बैंकों को ग्रामीण विकास की नीतियों एवं कार्यक्रमों के प्रति प्रशिक्षित एवं अभिप्रेरित होना चाहिए। लोगों की सक्रिय सहभागिता और स्थायी आधार पर सहयोग देश के ग्रामीण विकास की जटिल समस्याओं को हल करने में लाभदायक हो सकता है।

बी.एफ-24, शिवा इन्क्लेव,
ए-4, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली-110063

लघु कथा

कैसी दरियादिली

राजीव कुमार "आजाद"

कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। दांत से दांत बज रहे थे। हालांकि दिन के दस बज चुके थे फिर भी घने कुहरे की चादर अभी तक फैली हुई थी। ऐसे ही समय नीचे से मेरी पड़ोसिन मिसेज माथुर और मिसेज आहूजा की जोर-जोर से बोलने की आवाज सुनाई दी।

जब नीचे गई तो देखा कि एक रिक्शे वाले पर मिसेज माथुर और मिसेज आहूजा बरस रही थीं। मैं कुछ समझ नहीं पाई। जब पास जाकर पूछा तो मिसेज माथुर बोली– "देखो न पूजा यह हमें बाहर का समझता है। सब्जी मंडी से यहां का पांच रुपये मांग रहा है।" मैं बोलना चाह रही थी कि ठीक ही मांग रहा है लेकिन इससे पहले ही मिसेज आहूजा बोल उठी– "मैं तो तीन से ज्यादा नहीं दूंगी।"

मैं रिक्शे वाले को देख रही थी। पतला दुबला मरियल सा आदमी, काला आबनूसी रंग, उसके पैरों में चप्पल तक नहीं थी। एक पतला सा उधड़ा फटा स्वेटर पहने था। उसे देख मन में ख्याल आया कि भला इससे क्या सर्दी रुकती होगी।

मिसेज माथुर ने तीन रुपये लगभग फेंकते हुए कहा "लेना है तो लो नहीं तो रास्ता नापो।" यह कहते हुए मिसेज माथुर तुरंत मुड़ कर चल दीं। उन्हीं के पीछे-पीछे मिसेज आहूजा भी.....।

रिक्शे वाले का चेहरा बुझ गया। मैं स्तब्ध सी उन्हें जाते हुए देख रही थी। याद आया अभी कल ही तो किटी पार्टी में दोनों ने सबके सामने अपनी दरियादिली की डींगे हांकी थीं।

जय प्रकाश नगर, वार्ड नं० - 12,
खगड़िया-851204 (बिहार)

आर्थिक विकास का माडल क्या हो?

डा० सूरज सिंह

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत की स्थिति एक साफ स्लेट की भांति नहीं थी जिस पर स्पष्ट कुछ लिखा जा सके। ब्रिटिश शासन काल में भारतीय अर्थ-व्यवस्था इतनी जर्जर अवस्था को प्राप्त कर चुकी थी कि विकास की कल्पना करना तक दूर था। घी-दूध की नदियां बहने वाले देश में अकाल, गरीबी, भुखमरी व बेरोजगारी का साम्राज्य व्याप्त था और विश्व गुरु कहलाने वाले देश में अशिक्षा का वातावरण विद्यमान था। ऐसे में 15 अगस्त, 1947 को जब भारत को ब्रिटिश दासता से मुक्ति मिली तो देश को विकास के पथ पर अग्रसर करने के लिये योजनाकारों के समक्ष महत्ती चुनौती आ खड़ी हुई। तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने सोवियत रूस में आर्थिक नियोजन के परिणामों से प्रभावित होकर भारत में भी नियोजित आर्थिक विकास की प्रक्रिया को अपनाने पर जोर दिया, फलतः 15 मार्च, 1950 को एक सलाहकार संस्था के रूप में योजना आयोग का गठन किया गया, जिसके निर्देशन में पहली अप्रैल 1951 को प्रथम पंचवर्षीय योजना का सूत्रपात किया गया। तब से अब तक सात पंचवर्षीय योजनायें पूरी का जा चुकी हैं और आठवीं पंचवर्षीय योजना क्रियान्वयन के पथ पर अग्रसर है।

भारतीय अर्थव्यवस्था को गतिहीनता की स्थिति से उबारने के लिये योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया को अपनाये जाने के निर्णय के पीछे मुख्य रूप से तीन कारण रहे हैं :–

(i) आर्थिक पिछड़ेपन से देश को ऊपर उठाकर आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक विकास के अवसर प्रदान करना,

(ii) आर्थिक साधनों का न्यायानुकूल वितरण,

(iii) आत्मनिर्भरता को प्राप्त करना।

नियोजन के चार दशक

1 अप्रैल, 1951 से प्रारंभ किये गये योजनाबद्ध विकास के चार दशक पूर्ण हो चुके हैं। इस अवधि में विभिन्न क्षेत्रों में विकास देखने को मिलता है। आंकड़े बताते हैं कि प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में आर्थिक विकास में तेजी देखी गई है। इसी प्रकार प्रति व्यक्ति आय व राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि देखने को मिलती है। यह तथ्य तालिका में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

तालिका : नियोजन काल में आर्थिक विकास, सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं प्रति व्यक्ति आय

(प्रतिशत वृद्धि दर प्रतिवर्ष)

योजना का नाम	आर्थिक विकास की दर	सकल राष्ट्रीय उत्पाद	प्रति व्यक्ति आय
प्रथम	2.6	3.7	1.7
द्वितीय	3.9	4.1	1.9
तृतीय	2.3	2.7	(–) 0.1
चतुर्थ	3.3	3.4	2.9
पंचम	4.9	5.0	2.6
षष्ठम्	5.4	5.5	3.2
सप्तम्	5.5	5.5	3.4
अष्ठम्	5.6 (प्रस्तावित)	—	—

तालिका से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में विकास की दर में वृद्धि हो रही है, किन्तु सकल राष्ट्रीय उत्पाद की अपेक्षा प्रति व्यक्ति आय में कमी आई है, इसका मुख्य कारण तेजी से बढ़ती जनसंख्या, बेरोजगारी, गरीबी का दुष्चक्र व अर्थव्यवस्था में व्याप्त भारी आर्थिक व सामाजिक असमानता है।

सार्वजनिक क्षेत्र : बढ़ता पूंजी निवेश घटती लाभदायकता

नियोजन के शैशवकाल में विशेष कर 1956 की नवीन औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र पर विशेष बल दिया गया और इस क्षेत्र में वृहद् उद्योग, कल-कारखाने, बांध, बहुउद्देशीय सिंचाई परियोजनायें स्थापित की गईं। पं. नेहरू ने इन्हें भारत के तीर्थ कह कर सम्बोधित किया। वे देश को तीव्र औद्योगीकरण द्वारा विकास के उच्चतम शिखर पर पहुंचाना चाहते थे। इस सम्बन्ध में उनका मानना था कि सभी देश जिस देवता की आराधना करते हैं वह देवता है औद्योगीकरण, वह देवता है मशीन, वह देवता है तीव्र उत्पादकता और प्राकृतिक शक्तियों तथा साधनों का अधिकाधिक लाभप्रद उपयोग।

भारी उद्योगों के विकास से सम्बन्धित महालेनोविस माडल पर द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान अत्यधिक ध्यान केन्द्रित करने के पीछे कई कारण रहे जैसे, देश में उपलब्ध मानवीय व प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम विकास व विविधीकरण, भारतीय कृषि से जनसंख्या के अत्यधिक दबाव के प्रतिकूल प्रभावों को दूर करना, तीव्र औद्योगिक विकास को सर्वांगीण आर्थिक विकास की पूर्व शर्त मानना आदि। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र पर भारी राशि विनियोजित की गई, जहां प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुल विनियोजित राशि का 46 प्रतिशत भाग सार्वजनिक क्षेत्र पर विनियोजित किया गया, वहीं द्वितीय व तृतीय योजना में यह क्रमशः 55 प्रतिशत व 63.7 प्रतिशत था। सातवीं योजना में 48 प्रतिशत और आठवीं पंचवर्षीय योजना में 43 प्रतिशत भाग का प्रावधान किया गया।

यद्यपि नियोजन के प्रारम्भिक वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र से काफी आशाएं रखी गई थीं, यहां तक कि सार्वजनिक क्षेत्र को समस्त आर्थिक समस्याओं की रामबाण औषधि माना गया, किन्तु सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में बढ़ते घाटे और इनके द्वारा सामाजिक उत्तरदायित्वों का भली प्रकार निर्वाह न किये जाने से इनके आलोचक इन्हें सफेद हाथी कहकर सम्बोधित करने लगे। साथ ही कहा जाने लगा कि लोक उपक्रम न तो लोक रहे न ही उपक्रम। यह सत्य है कि देश में प्रथम पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में कुल पांच इकाइयां विद्यमान थीं जिनमें 29 करोड़ रुपये की धनराशि विनियोजित थी। उम्मीद की गई थी कि इन इकाइयों द्वारा आगामी पांच वर्षों में देश से बेरोजगारी व गरीबी का पूर्णतः उन्मूलन कर दिया जायेगा। आज देश में 240 से भी अधिक इकाइयां सार्वजनिक क्षेत्र में विद्यमान हैं जिनमें 1.50 अरब रुपये से अधिक की पूंजी विनियोजित है, साथ ही यह कटु सत्य है कि आज देश में बेरोजगारों की संख्या व गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली जनसंख्या 1956 की तुलना में कई गुना अधिक है। यह भी सत्य है कि सार्वजनिक क्षेत्र से जिस सेवा की आशा रखी गई थी उसमें भी पूर्णतः सफल नहीं रहा। आज परिवहन, बैंकिंग, डाक तार, बीमा, चिकित्सा व शिक्षा आदि क्षेत्रों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं के लिए आम उपभोक्ता द्वारा शिकायतें की जाती हैं।

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का माडल पूर्णतः विफल नहीं रहा तो इसे सफल भी नहीं कहा जा सकता। इसके पीछे कई कारण रहे हैं जिनमें प्रमुख हैं :

(i) प्रबन्धकीय कुशलता का अभाव
(ii) सामाजिक उत्तरदायित्व का अभाव
(iii) राजनैतिक हस्तक्षेप की बहुलता
(iv) उत्पादित वस्तु सेवा की निम्न गुणवत्ता और ऊंची लागत
(v) पर्याप्त नियंत्रण का अभाव
(vi) निजी क्षेत्र से प्रतिस्पर्धा का अभाव
(vii) स्थापित क्षमता का अल्प उपयोग

नियोजन काल में भारत में यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया गया, किन्तु 1990 के आते-आते इसके दुष्प्रभाव सामने आने लगे, जिसमें भुगतान संतुलन का घाटा, अनिवार्य वस्तुओं की कीमतों में तेजी से वृद्धि, बढ़ता हुआ विदेशी ऋण, विदेशी मुद्रा भंडार में भारी गिरावट आदि प्रमुख थे। इन सबके पीछे कई कारण गिनाये गये जैसे सार्वजनिक क्षेत्र का असंतोषजनक निष्पादन, निर्माण क्षेत्र के उत्पादन की निम्न गुणवत्ता और ऊंची लागत, विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों, लाइसेन्स व परमिट की बहुलता। इन समस्त कारणों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को नवीन दिशा देने के लिए प्रेरित किया। परिणामस्वरूप 1991 में नवीन आर्थिक नीति घोषित की गई।

आर्थिक उदारीकरण : एक अभिनव माडल

भारत में लगभग चार दशक तक सार्वजनिक क्षेत्र का प्रभुत्व छाया रहा। इस दौरान लोगों का वास्ता समाजवाद, लोक उपक्रम, लालफीताशाही, कोटा परमिट राज, लाइसेन्स, प्रशुल्क नियंत्रण आदि जैसी शब्दावलियों से पड़ा। इन सबका मिला जुला असर 1990 में तब देखने में आया जब अर्थव्यवस्था की स्थिति बिल्कुल क्षीण होने को आ गई। ऐसे में इन समस्त समस्याओं से निजात पाने के लिये ही आर्थिक उदारीकरण का माडल अपनाया गया जिसको अपनाये जाने के कारणों में आर्थिक विकास की प्रक्रिया में आयी रुकावटों को दूर करना, भारतीय अर्थ-व्यवस्था को भुगतान संकट व व्यापार संकट के जाल से मुक्त कराना, सार्वजनिक क्षेत्र की कार्य कुशलता में वृद्धि करना, नौकरशाही, अकुशलता व संसाधनों के दुरुपयोग में कमी करना, भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के समकक्ष लाना आदि प्रमुख हैं।

आर्थिक सुधार कार्यक्रम के तहत अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन दोनों प्रकार के उपाय किये गये। अल्पकालीन सुधार उपायों में रुपये का अवमूल्यन, अनुदान में कटौती, सरकारी व्ययों में कटौती, अनिवार्य आयातों हेतु विदेशी मुद्रा की व्यवस्था प्रमुख है। दीर्घकालीन सुधार उपायों में औद्योगिक क्षेत्र में नियंत्रणों व विनियमनों में उदारीकरण, लाइसेंसिंग प्रणाली का सरलीकरण, आयातों का उदारीकरण, सार्वजनिक क्षेत्र में विनिवेशन की नीति अपनाना, आयात व उत्पाद शुल्कों में भारी कटौती, निगम व आय कर की दरों का विवेकीकरण, फेरा व एम. आर. टी. पी. कानूनों को उदार बनाना तथा रुपये की पूर्ण परिवर्तनशीलता आदि प्रमुख हैं।

आर्थिक सुधार कार्यक्रम लागू किए चार वर्ष पूरे होने को आ रहे हैं। इस अवधि में कुछ अच्छे प्रभाव दृष्टिगोचर हुए हैं जैसे:

- विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि,
- निर्यात विकास दर में वृद्धि,
- भुगतान संतुलन के चालू खाते के घाटे में कमी,
- विदेशी पूंजी निवेश में वृद्धि,
- हवाला बाजार सम्बन्धी क्रियाओं पर नियंत्रण,
- मुद्रा स्फीति की दर में गिरावट।

आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के प्रति कुछ आशंकायें भी व्यक्त की जा रही हैं, जैसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों को पूरी छूट दे देने से अर्थव्यवस्था का एकाकी व असंतुलित विकास होगा (क्योंकि इनके द्वारा केवल उन्हीं क्षेत्रों में पूंजी का विनियोग किया जाता है जहां लाभ की अत्यधिक संभावना हो), निजीकरण को अत्यधिक प्रोत्साहन दिये जाने से अर्थव्यवस्था में आर्थिक सत्ता के संकेन्द्रण व एकाधिकार से संबंधित दोष उत्पन्न होंगे, प्रशुल्क दरों में कमी किये जाने व बाहर से ऐसी पूंजीगत वस्तुओं के आयात पर छूट का कोई औचित्य नहीं है, जिनका उत्पादन देश में ही किया जा रहा है। कोर सेक्टर में निजी क्षेत्र को आमंत्रण एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को छूट देने के परिणाम घातक हो सकते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र का विनिवेशन एवं पूंजी-प्रधान तकनीक अपनाए जाने के परिणामस्वरूप देश में सुरसा के मुंह की भांति फैलती बेरोजगारी में कमी होने के बजाय वृद्धि होगी, वर्तमान में देश में बढ़ते विदेशी पूंजी निवेश पर अर्जित लाभांश जब विदेशी मुद्रा के रूप में देश से बाहर जाएगा तो भारत में स्थित विदेशी मुद्रा के कोषों पर दबाव बढ़ेगा और रुपये की स्थिति कमजोर होगी, सरकार द्वारा घोषित छूटों व रियायतों का लाभ धनी व्यवसायी वर्ग को ही अधिक मिल पायेगा, जो अन्ततोगत्वा समाज में वर्ग संघर्ष को जन्म देगा। इसी प्रकार विभिन्न कर आगतों में कमी किये जाने और गैर योजनागत व्ययों में कमी न किये जाने से कृषि, आधारभूत संरचना, शिक्षा, ग्रामीण विकास आदि के लिए धन के आवंटन में कमी आयेगी। इस प्रकार वर्तमान में आर्थिक उदारीकरण का अपनाया गया माडल भी देश की आर्थिक स्थिति को अत्यधिक सुदृढ़ कर पायेगा ऐसा नहीं लगता।

भारत में आर्थिक विकास : वास्तविकता क्या है?

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही देश में आर्थिक विकास को त्वरित गति देने हेतु नियोजन का सहयोग लिया गया। नियोजन के चार दशक पूर्ण किये जा चुके हैं इस दौरान आर्थिक विकास में यद्यपि तेजी आई है किन्तु साथ ही निम्न अनुत्तरित प्रश्न भी हमारे सामने उभरते हैं :—

- क्या देश से गरीबी व बेरोजगारी का उन्मूलन किया जा चुका है?
- क्या प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकी है?

- क्या कथित विकास का स्वाद प्रत्येक व्यक्ति ले सका है?
- क्या शहरी व ग्रामीण अर्थव्यवस्था में संतुलन स्थापित किया जा सका है?

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कई विकृतियां पैदा हो चुकी हैं जैसे विरासत में मिले हिन्दुस्तान के आज दो भाग हो चुके हैं 20 प्रतिशत लोगों का इंडिया व 80 प्रतिशत लोगों का ग्रामीण भारत। इन दोनों के मध्य भारी अंतर देखने में आता है। विकास के परिणामस्वरूप शहरों में रहने वाली अधिकांश जनता को जहां तमाम सुख-सुविधायें उपलब्ध हैं, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली अधिकांश जनता की दिन भर की कमर तोड़ मेहनत के बावजूद भी बुनियादी आवश्यकतायें पूरी नहीं हो पाती, शहर में बैठकर लंदन या न्यूयार्क स्थित किसी व्यक्ति से 10 मिनट में बातचीत की जा सकती है जबकि देश में ही स्थित किसी दूर-दराज के गांव में बैठे व्यक्ति से कई दिनों तक सम्पर्क स्थापित नहीं किया जा सकता।

यह सच है कि नियोजन काल में सरकारी व गैर सरकारी स्तर पर कृषकों, गरीबों व पिछड़े वर्गों के लिये कई सुविधायें उपलब्ध करवाई गईं, किन्तु सुविधा देकर भी उन लोगों की माली हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। हां गरीबों के लिये उपलब्ध कराई गई सुविधाओं के अधिकांश हिस्से पर कुछ ही व्यक्तियों का आधिपत्य जरूर रहा। कृषि विकास के नाम पर हरित क्रांति का फार्मूला अपनाया गया किन्तु उसका लाभ कुछ ही प्रदेशों तक सीमित होकर रह गया; किसान की हालत आज यह हो चुकी है कि दिन-रात खेत पर पूरे परिवार के साथ कठोर परिश्रम करने के बावजूद भी अधिकांश कृषक परिवार पूरे वर्ष पेट भर रोटी नहीं खा सकते, और अनाजों के बिचौलिए बिना कोई श्रम किये रातों-रात धनवान बन जाते हैं। इसी प्रकार दुग्ध उत्पादन को बढ़ावा देने हेतु श्वेत क्रांति का शुभारंभ किया गया। उसका परिणाम यह हुआ कि आज पशुपालकों के घर में एक समय की चाय के लिए दूध नहीं मिलता। दिन भर जो बच्चे पशुओं के झुंड के पीछे अपने जीवन का अमूल्य समय व्यतीत करते हैं उनके बिस्तर से उठने के पहले ही दूध से भरे ड्रम गांव की सीमा से मीलों दूर जा चुके होते हैं। ऐसा नहीं है कि इन पशुपालकों को दूध बेचकर काफी आमदनी होती है। शहरों में इनके दूध में कई दोष गिनाये जाते हैं और बहुत ही सामान्य कीमत चुकाकर इनसे दूध खरीदा जाता है जिसे बाद में कई गुनी ऊंची कीमत पर बेचा जाता है। सामाजिक समानता दिलाने के नाम पर 1951 से ही सरकारी सेवाओं, शिक्षा आदि में आरक्षण का प्रावधान किया गया। आज यह आरक्षण एक फैशन का रूप ले चुका है। किन्तु देखा जाये तो सही अर्थों में आरक्षण सुविधाओं का लाभ जिन लोगों को मिलना चाहिए था वे आज तक इस नाम से परिचित भी नहीं हो पाये हैं। आज भी भारत के लगभग सभी राज्यों में ऐसी अनेक जनजातियां विद्यमान हैं जिन्होंने स्कूल के दर्शन तक नहीं किये, जो आज भी आदिम अवस्था में जीवन यापन करने को मजबूर हैं। ऐसे में भला आरक्षण सुविधा से उनको क्या लाभ?

देश में पिछले 48 वर्षों में गांवों से शहरों की ओर तेजी से पलायन बढ़ा है, जल्द से जल्द धनवान बनने के भ्रम में गांवों से मानवीय शक्ति शहरों में आ रही है जो शहरों में आकर रोजगार की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह मारी-मारी फिरती है और रात्रि में बिना कुछ खाये या आधे पेट खाये किसी फुटपाथ पर सोकर गुजार देते हैं। उन्हें शहरों में आकर धक्के खाना या मिल मालिकों की गाली-गलौच सुनना पसंद है किन्तु गांवों में ही रहकर अपना पुश्तैनी धन्धा करने में उन्हें शर्म महसूस होती है। इसका परिणाम यह है कि आज गांव के गांव खाली होते जा रहे हैं और शहरों में भीड़ बढ़ती जा रही है जिससे शहरीकरण से सम्बन्धित कई अन्य समस्यायें जन्म ले रही हैं। इस दौरान एक विशेष प्रवृत्ति देखने में आई है। देश के नागरिकों में स्वदेशी वस्तुओं के स्थान पर विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने में होड़ बढ़ी है। आज किसी वस्तु का आविष्कार न्यूयार्क, लंदन या टोकियो में होता है तो उसका उपयोग दिल्ली, बम्बई या बंगलौर के बाजारों में देखा जा सकता है। इस प्रवृत्ति को अर्थशास्त्र में प्रदर्शन प्रभाव कहा जाता है जो विकासशील देशों के विकास के लिए घातक समझा जाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जिस देश में विदेशी भाषा, विदेशी वस्तु और विदेशी संस्कृति अपनाने पर गर्व महसूस किया जाता है उस देश के भविष्य का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। स्वतंत्रता के पश्चात् देश के आर्थिक विकास के लिये विकास का जो माडल विकसित किया गया उसमें जनता के गाढ़े खून-पसीने की कमाई से बड़ी-बड़ी इमारतें स्थापित की गईं किन्तु उनकी उपादेयता पर किसी का ध्यान नहीं गया। इस प्रकार अभी तक देश के विकास के नाम पर जो भी माडल बनाए गये वे अपने लक्ष्य प्राप्ति में पूर्णतः सफल नहीं हो सके।

विकास का माडल क्या हो

आज पूरा विश्व जबकि आर्थिक रूप से स्वयं को महा-शक्ति के रूप में देखना चाहता है, भारत के लिये भी यह आवश्यक हो

गया है कि वह नियोजन के इन चार दशकों में अपनाई गई विभिन्न योजनाओं व नीतियों का मूल्यांकन करे। हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि दूसरे के भरोसे बैठ कर हम कभी भी सर्वांगीण विकास को मूर्त रूप नहीं दे सकते। भला दूसरे से ऋण लेकर घी पीकर स्वयं को समृद्ध मान लेना कोई बुद्धिमानी थोड़े है। वास्तविकता यही है कि देश के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखते हुए अभी तक कोई माडल ही विकसित नहीं किया गया। आज के संदर्भ में देश में विकास के लिये लघु, कुटीर व ग्रामोद्योगों के विकास माडल को अपनाये जाने व स्वदेशी भावना को प्रमुखता देने की सख्त आवश्यकता है। इस माडल के कई लाभ हैं जैसे :–

- देश में शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति पर रोक लगेगी, क्योंकि गांव के लोगों को यदि गांवों में ही रोजगार उपलब्ध होगा तो वे शहर में क्यों आना चाहेंगे? इससे जहां बेरोजगारी में कमी आयेगी वहीं शहरीकरण से संबंधित कई समस्याओं जैसे आवास, चिकित्सा, पर्यावरण, प्रदूषण, महामारी, महंगाई वृद्धि आदि पर रोक लग सकेगी।

- समाज में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण व एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर रोक लगेगी क्योंकि विकास के इस माडल में सबको अपना व्यवसाय स्थापित करने की छूट रहेगी।

- स्वदेशी उद्योगों को ही पनपाये जाने से और लोगों में उसके प्रति भावना जाग्रत किये जाने से देश का पैसा देश में ही रहेगा। कम से कम ऐसा तो नहीं होगा कि देश के किसानों से दो रुपये किलो आलू खरीद कर उसकी चिप्स बना कर उसे कई गुना ऊंची कीमत पर भारतीय बाजार में ही बेचा जाये।

- अर्थव्यवस्था के आधार स्तंभ कृषि व पशु पालन को विशेष दर्जा मिलेगा जिससे संतुलित आर्थिक विकास की अवधारणा को बल मिल जायेगा।

- ऐसा नहीं है कि विकास के इस माडल से भारत विश्व अर्थव्यवस्था से अलग-थलग पड़ जायेगा, बल्कि विश्व में अपनी अच्छी स्थिति को बनाये रखने में सक्षम होगा। द्वितीय महायुद्ध में अपना सर्वस्व लुटा देने के बाद जापान ने भी लघु व कुटीर उद्योगों के माडल को अपनाया और आज विश्व में जापान की आर्थिक स्थिति किसी से छिपी नहीं है।

- समाज में सभी लोग समानता के साथ जीवन निर्वाह कर सकेंगे, क्योंकि विकास के लिए किसी को कम या अधिक प्रोत्साहन न दिया जाकर सबको समान अवसर मिलेगा साथ ही वर्ग संघर्ष जैसी बुराइयों पर भी रोक लग सकेगी।

विकास के इस नवीन माडल के परिणामस्वरूप देश में प्रत्येक हाथ को काम, प्रत्येक पेट को भोजन, तन को कपड़ा और सिर को छत मिल सकेगी। आईये जरा कल्पना करें उस भारत की जब किसी को भी आर्थिक विकास के नारे देकर लूटा न जाएगा, जब भारत की बौद्धिकता के लिये विश्व में उसकी पहचान बन सकेगी, देश का कोई भी व्यक्ति भूखा नहीं होगा, रोजगार दिलाने के नाम पर किसी के ३ं। नहीं निकाले जायेंगे, गांवों में काम करने में कोई परहेज नहीं करेगा, बल्कि गांव की हरी-भरी वादियों में मिट्टी की भीनी व सौंधी सुगंध व नव प्राण दिलाने वाली ब्यार का आनन्द उठाने में हर कोई स्वयं को गौरवान्वित महसूस करेगा।

8 बी-9, प्रताप नगर,
टोंक फाटक, जयपुर,
पिन कोड-302015

ग्रामीण न्यायालयों की स्थापना

डा० संजय आचार्य

ग्रामीण राज्य के नाम से प्रचारित और समग्र ग्रामीण विकास की भावना को मूलरूप से आत्मसात् करने वाला राज्य मध्यप्रदेश ग्राम स्वराज की दिशा में एक और अनुकरणीय पहल करने जा रहा है। 1 जुलाई 1995 को राज्य मंत्रिमंडल ने प्रदेश में ग्रामीण न्यायालयों की स्थापना करने का निर्णय लिया है। ग्राम प्रधान राज्य होने के नाते राज्य की इस उपलब्धि के साथ ही राज्य का देश में एक विशिष्ट स्थान होगा। ग्रामीण न्यायालयों की स्थापना के क्षेत्र में प्रदेश देश का प्रथम राज्य होगा जहां पर ग्रामीण क्षेत्रों के विवाद ग्रामीण स्तर पर ही सुलझाये जाएंगे।

इन न्यायालयों की परिधि में साधारण किस्म के राजस्व और आपराधिक प्रकरण लाने और अधिकार क्षेत्र में जाब्ता फौजदारी के अधीन एक हजार रुपये के और अन्य अधिनियमों के अधीन पांच सौ रुपये जुर्माना करने की सीमा का निर्धारण, ग्रामीण क्षेत्र में न्याय प्रक्रिया को सरल, सुलभ और शीघ्र निपटाने वाला बनाएगा। मामलों की सुनवाई ग्राम न्यायालयों द्वारा होने और दोनों पक्षों के बीच समझौता कराने के प्रयास के कारण अदालतों में होने वाले खर्चों से भी ग्रामीण वर्ग बच जाएगा। राज्य विधि आयोग, न्यायमूर्ति तारे की अध्यक्षता में गठित आयोग और केन्द्र सरकार द्वारा गठित अध्ययन दल ने भी ग्राम न्यायालयों की स्थापना की सिफारिश की थी। राज्य सरकार द्वारा न्याय पंचायत और न्यायालय की कार्यविधि के संबंध में न्यायमूर्ति सोहनी की अध्यक्षता में गठित समिति ने सरकार को 'मध्य प्रदेश ग्राम न्यायालय' विधेयक की पर्याप्त पृष्ठभूमि तैयार करके दी थी। विधेयक पर केन्द्र शासन की पूर्वानुमति प्राप्त करने और विधानसभा में पारित होने के बाद ही राज्य में ग्राम न्यायालय अपना कार्य शुरू कर सकेंगे।

यद्यपि दीवानी दावे और राजस्व के छोटे प्रकरण निपटाने के लिए ग्राम न्यायालयों का गठन एक बुद्धिमत्तापूर्ण और साहसी कदम है, लेकिन ग्राम न्यायालयों की स्थापना के लिए क्षेत्र निर्धारित करते समय और न्याय पंचायत के लिए पांच सदस्यों की नियुक्ति करते समय अनेक सावधानियां बरतना आवश्यक है।

प्रथम चरण में राज्य में ग्राम न्यायालयों की स्थापना कुछ ही जिलों और पंचायत क्षेत्रों में की जाएगी, ताकि वहां के अनुभवों और कठिनाइयों के आधार पर तीन चरणों में इसका प्रभावी विस्तार समूचे मध्य प्रदेश में कर दिया जाए। सरकार को भूमि-सुधारों के बारे में भी गंभीरता से सोचना होगा, क्योंकि अनेक दीवानी मामले भूमि विवादों को लेकर ही हैं। यदि ग्राम न्यायालयों की स्थापना के पूर्व भूमि-सुधारों का कार्यक्रम गंभीरतापूर्वक लागू कर दिया जाए तो ग्राम न्यायालयों की सफलता सुनिश्चित हो जाएगी।

ग्रामीण न्यायालयों की सफलता हेतु सुझाव

(1) न्याय प्रक्रिया सरल हो।
(2) मितव्ययता यानी अधिक खर्च न हो।
(3) एक सशक्त और ईमानदार केडर के अधिकारियों की नियुक्ति की जाए।
(4) ग्रामीण स्तर पर इस सुविधा का प्रचार-प्रसार किया जाए।
(5) शिक्षा प्रसार कार्यक्रमों के साथ इसे जोड़ा जाए ताकि इसका समुचित लाभ ग्रामीण क्षेत्रों को मिल सके।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि 15 अगस्त 1994 को राज्य में ग्रामीण सरकार (पंचायती राज प्रणाली) के स्थापित होने के बाद दूसरे ही वर्ष राज्य की यह दूसरी बड़ी उपलब्धि होगी। एक ग्राम प्रधान प्रदेश होने के कारण यह राज्य की सराहनीय उपलब्धि है।

गांधी जी के "ग्राम-स्वराज" की ओर जाने वाला निश्चय ही मध्य प्रदेश राष्ट्र का प्रथम राज्य होगा, यही जन-जन की भावनाएं हैं।

279, शनीचरी हिल्स,
सागर (मध्य प्रदेश)

सीमित धरती : बढ़ते लोग

✍डा० रामअवतार शर्मा एवं श्रीमती सुनीता शर्मा

प्रकृति प्रदत्त निःशुल्क उपहारों में सबसे अधिक मूल्यवान उपहार धरती है। विश्व के किसी भी देश के लिए इसकी पूर्ति सीमित और पूरी तरह स्थिर होती है। प्रत्येक देश के लोगों को अपने असंख्य कार्यकलाप अपने देश की सीमित भूमि में ही सम्पन्न करने होते हैं। संपूर्ण समाज का पालन-पोषण धरती द्वारा ही किया जाता है, इसलिए हम धरती को मां मानते हैं। हर व्यक्ति धरती मां की गोद में जन्म लेता, खेलता, कूदता और बड़ा होता है तथा नाना प्रकार की क्रियाएं करने के बाद धरती मां के आंचल में ही सदैव के लिए सो जाता है। अतः सम्पूर्ण समाज का अस्तित्व तथा विकास भूमि पर ही आश्रित है। किसी देश में यातायात के साधन, उद्योगों की स्थापना, वन तथा खनन कार्य, कृषि, सिंचाई के साधन तथा भवन-निर्माण आदि का विकास उस देश में उपलब्ध भूमि के क्षेत्रफल, धरातल की बनावट और मिट्टी की उर्वरता पर निर्भर करता है। एक सीमा तक धरातल की बनावट और गुणवत्ता को मानवीय प्रयासों तथा वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से परिवर्तित किया जा सकता है लेकिन किसी भी तरह देश के भूमि क्षेत्रफल को नहीं बढ़ाया जा सकता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां आज भी लोगों में यह आम धारणा है कि 'उत्तम खेती, मध्यम बान, नीच चाकरी, भीख निदान।' इसीलिए भूमि का महत्व पश्चिमी औद्योगिक देशों की तुलना में भारत में कहीं अधिक है। हमारे देश के लगभग 70 प्रतिशत लोगों की आजीविका का साधन कृषि ही है। भौगोलिक दृष्टि और क्षेत्रफल के हिसाब से भारत एक विशाल देश है। इसकी लंबाई उत्तर से दक्षिण तक 3214 कि.मी. तथा चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक 2933 कि. मी. है। इसकी थल सीमा की लंबाई 15200 कि. मी. तथा समुद्र तट की लंबाई 6100 कि. मी. है। इसकी कुल भूमि 32.8 करोड़ हेक्टेयर है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का विश्व में सातवां स्थान है। भूमि उपयोग के हिसाब से देश के 22 प्रतिशत भाग पर वन सम्पदा है और कुल क्षेत्रफल के आधे भाग पर खेती की जाती है तथा शेष भूमि अन्य उपयोगों में घिरी हुई है। लेकिन जब जनसंख्या के सापेक्ष भूमि क्षेत्रफल पर विचार करते हैं तो स्थिति काफी संकटपूर्ण हो जाती है।

वर्तमान में भारत की जनसंख्या संपूर्ण विश्व की जनसंख्या की लगभग 16 प्रतिशत है जबकि भारत भूमि संपूर्ण विश्व क्षेत्रफल का मुश्किल से 2.4 प्रतिशत भाग ही है। 1901 से हर दस वर्ष बाद की गई जनगणनाओं से ज्ञात होता है कि इस सीमित क्षेत्रफल पर जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। 1901 में भारत की आबादी 23.8 करोड़ थी। इस शताब्दी के प्रथम 50 वर्षों में भारत की आबादी में 12.3 करोड़ की वृद्धि हुई और 1951 में देश की आबादी 36.1 करोड़ हो गई। 1951 से देश की आबादी में तेजी से वृद्धि हुई है। 1961 में देश की कुल जनसंख्या 43.9 करोड़ हो गयी। 1951 से 61 के बीच देश में 7.81 करोड़ लोगों की वृद्धि हुई जोकि 1951 की जनसंख्या की 21 प्रतिशत थी। 1971 में भारत की आबादी 54.82 करोड़ हो गई। 1961 से 71 में और भी तेजी से वृद्धि हुई। यह वृद्धि 24.8 प्रतिशत या कुल 10 करोड़ 90 लाख थी। 1971 से 81 के बीच भारत की आबादी में बहुत तेजी से वृद्धि हुई और 1981 में देश की कुल आबादी 68.40 करोड़ हो गई। 1971 से 81 के दस वर्षों में देश की आबादी में 13 करोड़ 70 लाख लोग और जुड़े। इस प्रकार यदि हिसाब लगायें तो 1947 में भारत की आबादी जोकि 32 करोड़ थी, पिछले 34 वर्षों के बाद दो गुनी से भी अधिक हो गयी। 1981 से 1991 के बीच जनसंख्या के मान में 16 करोड़ की वृद्धि हुई और आज भारत की कुल जनसंख्या समूचे संसार में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है।

जिन देशों मे आबादी कम थी और जनसंख्या वृद्धि की दर धीमी थी वहां तेजी से आर्थिक विकास हुआ, गरीबी, बेरोजगारी और आर्थिक पिछड़ेपन से छुटकारा मिला और आज वे देश विश्व के सबसे धनी तथा शक्तिशाली देशों में गिने जाते हैं। जिन देशों में जनसंख्या बहुत कम होती है उन देशों में जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास में सहायक होती है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि से बेकार पड़ी भूमि, खनिज व जल संपदा के साथ-साथ अनेक अज्ञात प्राकृतिक संसाधनों का दोहन होने लगता है। जन वृद्धि बाजारों का विस्तार करने, पूंजी निर्माण की दर को बढ़ाने और अनेक प्रकार के उद्योगों को बढ़ाने में सहायक होती है। इन्हीं क्रियाओं से आर्थिक प्रगति होती है। लेकिन जिन देशों में आबादी पहले ही

अधिक है वहां जनसंख्या वृद्धि से भूमि सहित सभी आर्थिक और प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ जाता है। इसलिए गरीबी और बेरोजगारी दोनों के बढ़ने के अतिरिक्त आर्थिक पतन भी होता है।

हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि और सीमित भू-क्षेत्रफल के कारण जनसंख्या सघनता बढ़ रही है और औसत रूप में प्रतिवर्ग कि. मी. भूमि क्षेत्रफल पर लोगों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। भारत में प्रतिवर्ग कि. मी. क्षेत्रफल पर 1901 में 82, 1951 में 117, 1971 में 177, 1981 में 216 और 1991 में 267 लोग निवास करते थे।

जनसंख्या में वृद्धि के साथ जहां प्रतिव्यक्ति भूमि का क्षेत्रफल कम होता जा रहा है वहां कृषि भूमि पर भी जनभार बढ़ रहा है। भारत में 1901 में प्रतिव्यक्ति कृषि क्षेत्रफल 1.1 एकड़ था जो अब 0.15 एकड़ ही रह गया है। जनभार में वृद्धि के कारण देश में कृषि जोतों का आकार दिन प्रतिदिन छोटा होता जा रहा है। भारत में कृषि जोतों का औसत आकार 1953 में 3.1 हेक्टेयर था जो 1961 में 2.6, 1971 में 2.3 और अब 1.5 हेक्टेयर से भी कम रह गया है।

जनसंख्या वृद्धि के कारण अकेले उत्तर प्रदेश में प्रतिवर्ष 24,000 हेक्टेयर भूमि कृषि से हटाकर अन्य उपयोगों में लाई जा रही है।

जोतों का आकार घटने और जनसंख्या बढ़ने से कृषि व्यवस्था पिछड़ी ही रहती है। कृषि में आवश्यकता से अधिक श्रम केन्द्रित होने लगता है जिससे अदृश्य बेरोजगारी बढ़ती है। कृषि के यंत्रीकरण और विशिष्टीकरण में बाधा पड़ती है और कृषि उत्पादकता में वृद्धि नहीं हो पाती है। ऐसा अनुमान है कि हमारे देश के कृषिगत लोगों में से लगभग 30 प्रतिशत लोग अदृश्य रूप से बेरोजगार हैं और इनकी कृषि में उत्पादकता शून्य है।

जनसंख्या की अधिकता और कृषि भूमि पर बढ़ते हुए जनभार का सबसे गंभीर दुष्परिणाम यह है कि कृषि अलाभप्रद व्यवसाय बन गया है। लोग वैकल्पिक रोजगार के साधनों के अभाव में इसे निर्वाह के साधन के रूप में अपनाते हैं। कृषि क्रियाओं में बचतों का अभाव होने के कारण बेकार पड़ी बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए आज साधनों का नितांत अभाव है। यही कारण है कि भारत में आज भी नौ करोड़ हेक्टेयर भूमि सिंचाई के साधनों के अभाव में बेकार पड़ी है।

जनसंख्या वृद्धि की ऊंची दर आज हमारे देश के लिए गंभीर संकट बन चुकी है क्योंकि हमारा विकासशील देश एक ओर जहां अनेकों आर्थिक समस्याओं से जूझ रहा है वहां दूसरी ओर आर्थिक विकास के लिए आवश्यक ऊर्जा संकट का समाधान करने में समर्थ नहीं हो पा रहा है। विकास के लिए ऊर्जा की पूर्ति करनी चाहिए और ऊर्जा उत्पादन के लिए अतिरिक्त साधनों की आवश्यकता है। यद्यपि हमारे देश में विद्युत निर्माण के लिए जल संसाधन प्रचुर मात्रा में हैं परंतु हम देश में विद्यमान कुल जल विद्युत संभाव्यता का केवल 10 प्रतिशत भाग ही विद्युत में परिवर्तित कर पाते हैं। यह स्थिति जल विद्युत निर्माण के लिए आवश्यक विनियोगों की कमी के कारण हैं और हम घोर ऊर्जा संकट से गुजर रहे हैं। कोयले की खानों से भी अंधाधुंध खुदाई की जा रही है। खनिज तेल के क्षेत्र में देश आज भी आत्मनिर्भर न होने के कारण अरबों रुपये का तेल आयात करता है।

प्रकृति की महान अनुकम्पा के कारण यहां की जलवायु उत्तम है। अतः यहां ऊष्ण तथा शीतोष्ण दोनों प्रकार की जलवायु की अनेक प्रकार की वनस्पति पाई जाती हैं, परंतु बढ़ते लोगों की बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वनों की अंधाधुंध कटाई हो रही है जिससे प्रतिव्यक्ति वन क्षेत्रफल कम होता चला जा रहा है। इससे प्राकृतिक असंतुलन की स्थिति पैदा हो गयी है और पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। यही कारण है कि कभी सूखे तो कभी बाढ़ों की भीषणता हो जाती है। विगत दो भयंकर भूकंपों ने तो जन मानस के प्राण ही हर लिए हैं।

इस प्रकार बढ़ती आबादी अनेक आर्थिक व सामाजिक समस्याओं की एकमात्र जननी है। वास्तव में परिवार का आकार बड़ा होने पर समस्यायें अधिक हो जाती हैं और सभी समस्याओं का समाधान नहीं हो पाता है। इसलिए अधिक संतान निर्धनता का माप प्रस्तुत करती हैं। जिन परिवारों में अधिक संतान होती हैं उनका जीवन सुखी नहीं रह पाता है। क्योंकि बड़े परिवारों में सभी सदस्यों को पौष्टिक आहार, बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा और उनका उत्तम पालन पोषण करना संभव नहीं हो पाता है। अतः उनका समुचित शारीरिक और मानसिक विकास भी नहीं हो पाता और वे आगे चलकर कमजोर नागरिक बनते हैं। उनकी कार्यक्षमता भी कम होती है, वे कम कमा पाते हैं, कम आय से वे निर्धन

होते चले जाते हैं। इस निर्धनता के परिणामस्वरूप उनको सुख सुविधायें तो दूर, भरपेट भोजन भी नहीं मिल पाता। इस प्रकार सुख-समृद्धि और परिवार के आकार में विपरीत संबंध होता है। यही स्थिति पूरे समाज, देश और संपूर्ण विश्व के संबंध में सही बैठती है।

जनसंख्या बढ़ने से एक ओर उपभोग तथा बुनियादी आवश्यकताओं पर अधिक व्यय होता है और भविष्य के लिए बचत नहीं हो पाती तथा दूसरी ओर वर्तमान कृषि उद्योग तथा सम्पत्तियों का बंटवारा होने से आने वाली पीढ़ी की आर्थिक स्थिति और भी हीन हो जाती है। परिवार में बच्चों की अधिकता परिवार की उन्नति में बाधक होती है। यही कारण है कि हमारे देश में विगत चालीस वर्षों से नियोजित आर्थिक विकास प्रक्रिया अपनाये जाने के बाद भी लगभग 22 करोड़ लोग दयनीय जीवन बिता रहे हैं। लाखों लोग आधे नंगे रहते हैं। बढ़ती आबादी के कारण ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में आवास की समस्या गंभीर होती चली जा रही है। अनेक लोग झुग्गी-झोपड़ियों, गंदी बस्तियों, फुटपाथ और पेड़ों के नीचे रहने पर मजबूर हैं। इन स्थानों में सीलन, मच्छर और प्रदूषित वायु होने के कारण अनेक जानलेवा बीमारियां फैल जाती हैं। इसके अलावा कहीं-कहीं तो परिवार का आकार देखते हुए मकान का आकार इतना छोटा होता है कि उन्हें अपने दैनिक कार्यों को करने में भी अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

इसलिए यदि हम चाहते हैं कि अपना परिवार, समाज और देश खुशहाल बने तो परिवार के आकार को छोटा रखना होगा। छोटा परिवार देश को स्वस्थ नागरिक देकर उसकी उन्नति में अपना पूरा योगदान देता है। एक छोटा परिवार देश की एक स्वस्थ तथा मजबूत इकाई होती है। वैसे भी बढ़ती हुई महंगाई और आवश्यकताओं के बीच यह आवश्यक है कि परिवार का आकार छोटा रखा जाए। संतानों में लिंग के आधार पर भेद-भाव न करें। कई परिवारों में लड़के के इच्छा के कारण परिवार का आकार बढ़ता जाता है और सुख-समृद्धि का अभाव होता जाता है। अतः लड़के और लड़की को समान मानें तथा पुत्र या पुत्री की अभिलाषा रखकर आगे संतानोत्पत्ति को रोकें। समाज में जनसंख्या वृद्धि में सहायक परंपराओं, प्रथाओं और कुरीतियों का बहिष्कार कर एक आदर्श, खुशहाल और प्रगतिशील छोटे परिवार का निर्माण करें तथा दूसरों के लिए प्रेरणा स्रोत बनें। यही अपने लिए और अपने देशवासियों की सुख-समृद्धि की दिशा में वर्तमान पीढ़ी का प्रथम दायित्व है।

इसी से आय में उपभोग का दबाव कम होगा और बचतों में वृद्धि करके प्राकृतिक साधनों की खोज, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण तथा कृषि विकास के लिए अतिरिक्त साधन जुटाये जा सकेंगे। परिणामस्वरूप कुल उत्पादन में वृद्धि होगी और अनवरत आर्थिक विकास की दीर्घकालीन प्रक्रिया आगे बढ़ेगी। सीमित जनसंख्या के कारण घरेलू मांग कम हो जायेगी, निर्यातों में वृद्धि होगी और हम उन्नति के पथ पर आगे बढ़ते जायेंगे।

राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
रामपुर (उ. प्र.) **244901**

लेखकों से

"कुरुक्षेत्र" के लिए मौलिक लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा आदि रचनाएं टाइप कराकर दो प्रतियों में भेजिये। रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र अवश्य भेजिए। जिन रचनाओं के साथ ऐसा प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा उन्हें स्वीकार नहीं किया जाएगा। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा अपना पता लिखा लिफाफा लगाना न भूलें। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', 467, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजें।

–सम्पादक

सर्वांगीण विकास हेतु महिलाओं को शिक्षा

विनय भूषण तिवारी

निरक्षरता समाज के लिए अभिशाप है। जहां निरक्षरता है वहां अनेकानेक समस्याएं मुंह बाये खड़ी हैं। समाज के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विकास हेतु महिलाओं का शिक्षित होना आवश्यक है। जैसा कि कहा गया है कि यदि एक पुरुष शिक्षित होता है तो एक व्यक्ति शिक्षित होता है और यदि एक महिला शिक्षित होती है तो एक परिवार शिक्षित होता है। इसलिए समय की मांग है कि महिलाओं को शत-प्रतिशत साक्षर तथा जागृत बनाया जाए।

निरक्षरता समाप्त करने के प्रयास

देश में निरक्षरता के अभिशाप को समाप्त करने के लिए वर्ष 1988 में 'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन' शुरू किया गया। मिशन के अनुसार कुल निरक्षरों का 50 प्रतिशत देश के चार बड़े हिन्दी भाषी राज्यों—बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में है। यदि इन चार राज्यों में महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल और आन्ध्र प्रदेश को जोड़ दिया जाए तो देश के कुल निरक्षरों का 70 प्रतिशत इन सात राज्यों में है। पूरी दुनिया में जितने निरक्षर हैं, उनमें करीब 15 प्रतिशत बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में हैं। वर्ष 1991 की गणना के आधार पर देश का सम्पूर्ण साक्षरता दर 52.19 प्रतिशत है। इसमें पुरुषों की साक्षरता दर 64.13 है और महिलाओं की दर 39.19 है। जब महिलाओं की शिक्षा की चर्चा की जाती है तो देखा जाता है कि गरीब महिलाओं का अधिसंख्य भाग ऐसी परिस्थितियों में जीवन-यापन करता है कि उन्हें शिक्षित करना सरल नहीं है।

समाज में जागृति एवं जनचेतना के साथ-साथ उपरोक्त रूढ़िवादी मान्यताओं का तिलस्म अब समाप्त हो चला है। सरकार ने सन 2000 तक सभी को शिक्षित करने की योजना तैयार की है। इसमें विशेष ध्यान महिलाओं पर रखा जा रहा है। 'आपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना' में अब तक यह प्रावधान है कि भविष्य में भर्ती किये गये शिक्षकों में से कम से कम 50 प्रतिशत महिलाएं होनी चाहिए। इस योजना के तहत शिक्षकों के भरे गये 1,13,259 पदों में से 48.6 प्रतिशत पदों पर महिलाओं को रखा गया है। वर्ष 1995-96 में इस योजना हेतु 279 करोड़ रुपये बजट का प्रावधान किया गया है। गैर औपचारिक शिक्षा की योजना के अन्तर्गत ऐसे गैर औपचारिक शिक्षा केन्द्रों को 90 प्रतिशत की सहायता दी जाती है जो केवल लड़कियों को शिक्षा देने के लिए होते हैं। इस प्रकार के केन्द्रों की कुल संख्या में केवल महिलाओं के लिए काम करने वाले केन्द्रों का अनुपात, जो पहले 25 प्रतिशत था, उसे बढ़ाकर 40 प्रतिशत कर दिया गया है। नवोदय तथा केन्द्रीय विद्यालयों में कक्षा 12 तक लड़कियों को निःशुल्क शिक्षा के साथ-साथ यह सुनिश्चित किया जायेगा कि प्रत्येक नवोदय विद्यालय में सम्पूर्ण छात्रों का दो तिहाई लड़कियां हों।

शिक्षा के क्षेत्र में सरकार द्वारा उठाये गये कारगर कदमों के कारण सार्थक परिणाम सामने आये हैं। उच्च शिक्षा संस्थानों में नामांकित महिलाओं की संख्या 1950-51 में 40,000 थी, 1993-94 में बढ़कर लगभग 16,64,000 हो गयी। इस प्रकार 43 वर्ष की अवधि में 41 गुना से भी अधिक वृद्धि हुई है। महिलाओं के उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान हेतु महिला अध्ययन सेल स्थापित करने के लिए 22 विश्वविद्यालयों तथा 11 कालेजों को सहायता भी उपलब्ध की गई है।

महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान

तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा में महिलाओं की रुचि पुरुषों से कम नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि समय की मुख्य धारा से उन्हें जोड़कर प्रेरित किया जाए। गत वर्षों में इस क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी धाराओं में (भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान तथा पोलिटेक्निक में) भी छात्राओं की संख्या 1950-51 में सिर्फ 40 (0.3 प्रतिशत) थी। वर्ष 1986-87 में बढ़कर 16.67 हजार (7.7 प्रतिशत) तथा वर्ष 1993-94 में 78.3 हजार (13.1 प्रतिशत) हो गई।

इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण साक्षरता अभियान में महिलाओं पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। यह सामान्य रूप से पाया गया है कि इस अभियान में महिलाओं का नामांकन 60 प्रतिशत से

अधिक है। यह अभियान पूरे देश के 338 जिलों में चलाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त 130 जिलों में उत्तर साक्षरता अभियान स्वीकृत किये गये हैं। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के माध्यम से अनुमानित 10.4 करोड़ निरक्षरों में से 8 करोड़ निरक्षरों को आठवीं योजना अवधि के दौरान साक्षर बनाया जायेगा। इनमें से अधिसंख्य भाग महिलाओं का होगा। सम्पूर्ण साक्षरता अभियान के जरिए कुल 350 जिलों को शामिल किया जायेगा। शेष 2.4 करोड़ व्यक्तियों को एजेंसियों, शैक्षिक संस्थाओं तथा नेहरू युवा केन्द्रों के माध्यम से साक्षर बनाया जायेगा।

गांवों में प्रभाव

गत चार वर्षों में उक्त परियोजना में शामिल किये गांवों में बड़ा प्रभावी असर हुआ है। इस समय यह कार्यक्रम उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात और आन्ध्र प्रदेश अर्थात चार राज्यों के 15 जिलों में लागू किया जा रहा है। कार्यक्रम के अन्तर्गत लगभग 1,752 गांवों को शामिल किया जा चुका है। पेयजल पहुंचने, जवाहर रोजगार योजना में आरक्षण, शिक्षा में बच्चों की भागीदारी जैसे मुद्दों पर ध्यान देने और घरेलू व सामाजिक हिंसा से जुड़े मुद्दों को हल करने में सहायता देने में महिलाएं सक्षम हो गयी हैं।

साक्षरता के क्षेत्र में सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं के परिणाम नितान्त सार्थक सिद्ध हुए हैं। इसे और कारगर एवं प्रभावी बनाने हेतु जन सहयोग की आवश्यकता है। सरकार द्वारा चलाये गये शिक्षा संबंधित कार्यक्रमों की सफलता के लिए गैर सरकारी संगठनों को भी भाग लेना होगा जैसा कि किसी विद्वान ने कहा था, "इच वन टीच वन"। इस सिद्धान्त को व्यवहार में लाना होगा। इस सन्दर्भ में भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की उक्ति उल्लेखनीय है। उन्होंने कहा था "विश्वविद्यालय की महिलाओं को उस अन्तर को नहीं भूलने देना चाहिए जो शिक्षित महिलाओं तथा अन्य अभावग्रस्त स्त्रियों के बीच हैं। शिक्षित महिलाओं की यह जिम्मेदारी है कि वे कम सुविधा सम्पन्न स्त्रियों के साथ ज्ञान और कौशल्य की हिस्सेदारी निभाएं तथा उन्हें नये-नये विचारों को समझाएं, अंधविश्वास का सामना करने तथा अपने हितों की रक्षा करने के लिए उन्हें प्रेरित करें"।

सभी को साक्षर बनाने की मुहिम हमें आजादी की लड़ाई की भांति लड़नी होगी। देश का हर साक्षर व्यक्ति निरक्षरों के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझे तभी लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर सकते हैं।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

पाठकों के विचार

इस पत्रिका में 'पाठकों के विचार' स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार दो सौ शब्दों से अधिक के न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, कमरा न० 467, कृषि भवन, नई दिल्ली - 110001 के पते पर भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों को पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

–सम्पादक

मशरूम कृषि : स्वास्थ्यवर्धक व्यवसाय

धनंजय चोपड़ा

कुछ वनस्पतियां ऐसी होती हैं जो स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होने के साथ-साथ व्यवसायिक दृष्टि से भी लाभदायक होती हैं। ऐसी ही वनस्पतियों में से एक है 'मशरूम'। आज के आधुनिक समाज में मशरूम एक महंगा भोज्य पदार्थ है। अपने देश में यह सबसे अधिक उत्तरी राज्यों में उगायी जाती है लेकिन इसकी ज्यादा खपत महाराष्ट्र, उड़ीसा तथा कर्नाटक इत्यादि में होती है। पिछले कुछ वर्षों से उत्तर भारत में इसकी खपत बढ़ने लगी है। यही कारण है कि मशरूम की कृषि एक उद्योग के रूप में विकसित होने लगी है।

मशरूम : एक परिचय

मशरूम फूफंद जाति की कवक वनस्पति है जिसका आकार मुख्यतः छतरी के समान होता है। ये सफेद, भूरे, लाल, चकत्तेदार व बादामी, पीले तथा काले रंग में पायी जाती है। कुछ मशरूम जहरीली भी होती हैं जिनमें लाल रंग की मशरूम प्रमुख है। सामान्यतः मशरूम को खुंबी, गुच्छी और कुकुरमुत्ता के नाम से भी जाना जाता है। मशरूम पहाड़ी, मैदानी और यहां तक कि रेगिस्तानी क्षेत्रों में भी उगायी जा सकती है। बरसात के दिनों में तो यह नमी पाकर स्वयं ही उग जाती है लेकिन आजकल इसे कम्पोस्ट खाद में उचित तापक्रम पर उन्नत बीजों द्वारा उगाया जा रहा है।

कुछ मशरूम जमीन के भीतर उगती हैं जिन्हें खोज निकालना बहुत कठिन होता है। इनमें सबसे प्रमुख ट्रफ्ल या गुच्छी है। गुच्छी सबसे मंहगी मशरूम है। यह भारत में कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश में टिहरी गढ़वाल और कुमांयु तथा अरुणाचल प्रदेश के वनों में मिलती है। सामान्यतः यह ओक या बलूत के पेड़ के नीचे जमीन के भीतर उगती है। पहाड़ी क्षेत्र के किसान इन्हें इनकी विशेष गंध की सहायता से खोजते हैं। यूरोप में इसे खोजने के लिये कुत्तों की सहायता ली जाती है। हाल ही में गुच्छी की बढ़ती मांग और व्यावसायिकता को देखते हुए मानचेस्टर विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने इसे खोजने के लिए एक यंत्र का आविष्कार किया है।

मशरूम और स्वास्थ्य

मशरूम स्वास्थ्य के लिय अत्यन्त गुणकारी है इसमें मांस, मछली, दूध, आलू तथा अन्य सब्जियों की तुलना में प्रोटीन की मात्रा लगभग दुगुनी होती है। इसके अतिरिक्त इसमें स्टार्च नहीं होता जिससे यह मधुमेह के रोगियों के लिये अत्यन्त लाभदायक है। साथ ही साथ इसमें कैन्सर अवरोधक पॉलीसैकेराइड्स उपस्थित रहता है जो इस प्राणघातक रोग को बढ़ने से रोकता है। इसके अतिरिक्त इसमें विटामिन बी-1 (थायमीन), विटामिन बी-2 (राइबोफ्लेविन), विटामिन सी (एस्कोर्बिक अम्ल), विटामिन बी-5 (नियासिन) तथा कुछ खनिज तत्व जैसे कैल्शियम, पोटेशियम, फास्फोरस तथा लोह तत्व होते हैं। विटामिनों की उपस्थिति जहां इसे बेरी बेरी, स्कर्वी, मुंह के कोण फटने और पैलाग्रा जैसे रोगों का अवरोधक बनाती है वहीं प्रोटीन की प्रचुरता और खनिज तत्वों की उपस्थिति इसे शरीर के विकास के लिये अत्यन्त लाभदायक बना देती है।

मशरूम उद्योग का विकास

आज के औद्योगिक युग में मशरूम उत्पादन एक उद्योग के रूप में विकसित होता जा रहा है। इसके उत्पादन की परम्परागत विधियों में परिवर्तन के कारण इसके उत्पादन में दिनोंदिन वृद्धि रही है। आज स्थिति यह है कि हमारे देश में लगभग 25,000 टन मशरूम का उत्पादन हो रहा है जिसमें से लगभग 4000 टन मशरूम का निर्यात भी किया जाने लगा है।

मशरूम की खेती नमी तथा वायुमण्डलीय ताप से बहुत अधिक प्रभावित होती है। तापमान को नियंत्रित करने वाले आधुनिक तरीकों का प्रयोग करके तथा उचित मात्रा में नमी लाकर मशरूम को कहीं भी और किसी भी मौसम में उगाया जा सकता है। भारत के कुल मशरूम उत्पादन का लगभग 72 प्रतिशत उत्पादन मैदानी भागों में होता है। उगायी जा रही प्रजातियों में ओएस्टर, पेडस्ट्रा और सफेद बटन मशरूम प्रमुख हैं। इनमें सबसे अधिक सफेद बटन मशरूम का उत्पादन होता है।

सामान्यतः परम्परागत ढंग से कम लागत पर मशरूम सरलता से उगायी जा सकती है। इसके लिये अधिक भूमि की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसे घर की छत या किसी ठंडे कमरे में भी उगाया जा सकता है। इसकी खेती के लिये कच्चे माल के रूप में गेहूं का भूसा, मुर्गी की विष्ठा, बाजरा और पुआल इत्यादि कृषिजन्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है जो आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। आज उच्च तकनीक के कारण एक ही कमरे में वर्ष भर में मशरूम की चार या पांच फसलें ली जा सकती हैं।

मशरूम की स्वास्थ्यवर्धकता तथा व्यवसायिकता को देखते हुए भारत सरकार इसे उद्योग के रूप में विकसित करने का प्रयास कर रही है। भारत सरकार के औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्रों में मशरूम उगाने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण प्राप्त लाभार्थी अपना मशरूम उद्योग लगाने के लिये जवाहर रोजगार योजना तथा प्रधानमंत्री की रोजगार योजना के अन्तर्गत आर्थिक सहायता भी प्राप्त कर सकते हैं। ग्रामीण/शहरी युवा वर्ग मशरूम उत्पादन को स्वरोजगार के रूप में भी अपना सकता है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि मशरूम की उन्नत प्रजातियों की पैदावार बढ़ाई जाए ताकि अधिक से अधिक लोग इसकी स्वास्थ्यवर्धकता का लाभ उठा सकें। साथ ही साथ यदि हम इसकी उच्च गुणवत्ता बनाये रखने में सफल रहते हैं तो मशरूम का अधिकाधिक निर्यात करके विदेशी मुद्रा भी अर्जित कर सकते हैं।

''आंचल'' 906ए/527एच-3,
कक्कड़ नगर, दरियाबाद,
इलाहाबाद-211003

कविता

अकेला नहीं

रवि श्रीवास्तव

वे अकेले और निःसन्तान थे,
मेरे सहयोगी रुख पर उनका कथन था–
मैं एकांगी कहां?
दो पेड़ मेरे साथ हैं,
वही मेरे हाथ हैं,
ये मेरे कमाऊ बेटे हैं,
दूसरे की तरह कभी नहीं ऐंठे हैं,
उनके दिए फलों को बेचकर
मेरा घर खर्च चलता है,
उन्हीं के सूखे पत्तों से मेरा चूल्हा जलता है,
न सिर्फ मुझे वरन् दूसरों
को भी छाया देते हैं,
बदले में कुछ नही लेते हैं,
आंधी तूफान, और धूप के थपेड़ों को सहते हैं
लेकिन कभी 'उफ' नहीं कहते हैं,
मुझे किसी सहयोग की नहीं चाह
हां! दिखा सकते हो तो उन्हें दिखाओ राह,
जो अपने हाथों अपने बेटों को
मौत के घाट उतार देते हैं,
और परिवार रूपी भूमि को
बंजर करार देते हैं।

प्रोविजन शाखा ओ.डी.,
किला-इलाहाबाद (उ.प्र.),
पिनः 211005

सहरिया जनजाति की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति

ओ.पी. शर्मा

राजस्थान के नवोदित बांरा जिले में किशनगंज तथा शाहबाद ऐसी तहसीले हैं, जहां राष्ट्र की महत्वपूर्ण अनुसूचित जनजाति 'सहरिया' बहुतायत में निवास करती है। पंचायत समिति किशनगंज में खण्डेला, रामपुरटोडिया, लक्ष्मीपुरा, पीपल्दा-कलां, बृजनगर, असनावर, छीनोद, सुवांस, गरडा, बकनपुरा आदि ग्राम पंचायतों में सहरिया जनजाति की बाहुल्यता है।

हाल ही में सम्पन्न हुए पंचायत चुनावों में सहरिया बहुल क्षेत्र लक्ष्मीपुरा, खण्डेला, रामपुरटोडिया में अनुसूचित जनजाति के लोगों की स्थिति को जानने का अवसर मिला।

देश को आजाद हुए 47 वर्ष हो गए हैं। इन 47 वर्षों के नियोजन काल में सात पंचवर्षीय योजनाएं, पांच एक-एक वर्षीय योजनाएं तथा आठवीं पंचवर्षीय योजना के भी तीन वर्ष बीत गए हैं। करोड़ों रुपया योजनाओं पर खर्च किया गया। इस सबके बावजूद आज भी देश में गरीबी का ताण्डव नृत्य जारी है। इसमें जनजातियों की बदतर स्थिति भारत की विकास योजनाओं पर एक प्रश्न चिन्ह है। आजादी से लेकर आज तक सहरियों की स्थिति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। इनकी बस्तियों में निरक्षरता का अंधकार है। सरकार द्वारा चलाए जा रहे साक्षरता अभियान में इनकी कोई रुचि नहीं है। ये लोग अन्धविश्वासों में जकड़े हुए हैं और किसी तरह का बदलाव इन्हें स्वीकार नहीं है। सरकार ने अनेक कल्याणकारी योजनाएं सहरियों की दशा सुधारने के लिए चलाई हैं, किंतु इनकी दयनीय स्थिति को देखकर ऐसा नहीं लगता कि सरकारी योजनाओं का लाभ इन तक पहुंचा हो। यह जनजाति जंगलों में निवास करती है। यद्यपि इनकी बस्तियों में बिजली, पानी आदि की व्यवस्था सरकार ने कर रखी है, किंतु कच्ची पक्की सड़कों का नितांत अभाव है।

सहरिया जनजाति बहुल क्षेत्रों का अवलोकन करने पर आर्थिक विषमता सहज ही दृष्टिगोचर होती है। इनकी बस्तियों में चंद प्रभावशाली लोग हैं जिनकी गांवों की अधिकांश सम्पदा पर मजबूत पकड़ है। सिंचित भूमि पर इन्ही प्रभावी लोगों का कब्जा है। कुएं हैं, जिनका पानी कम ही टूटता है। विद्युत कनेक्शन है। फसलों से लहलहाते खेत है। कृषि के लिए ट्रेक्टर व अन्य कृषिगत उपकरण तथा व्यक्तिगत कार्यों के लिए जीपें, मोटरसाइकिलें हैं। इन्हीं लोगों के नियंत्रण में स्थानीय संसाधनों पर आधारित लघु उद्योग हैं। इन लोगों का रहन-सहन तथा वैभवपूर्ण जीवन महानगरों के विलासितापूर्ण जीवन जीने वालों से कम प्रतीत नहीं होता है। दूसरी ओर सहरिया जनजाति के लोग हैं जिनकी निर्धनता को बड़ी मुश्किल से ही कलमबद्ध किया जा सकता है। इन्हें दो जून रोटी मुश्किल से ही नसीब हो पाती है। तन ढकने को वस्त्र नहीं, सर्द हवाओं में उन्हें कांपते हुए देखा जा सकता है। रहने को घासफूस की झोपड़ियां और छप्पर हैं।

सहरिया जनजाति जीविका के लिए कृषि, पशु तथा वनों पर निर्भर है। अधिकांश सहरियों के पास खेत हैं ही नहीं और यदि हैं भी तो गिरवी रखे हुए हैं। खेती के न होने से पशु संपदा के समृद्ध होने की कल्पना नहीं की जा सकती है। यह सही है कि सहरिया वनों से प्राप्त उपज पर जीवन बसर करते हैं, किन्तु वनों पर भी ठेका प्रणाली द्वारा प्रभावी लोगों का ही नियंत्रण रहता है। सहरिया जनजाति बहुल क्षेत्र में कीमती जंगल हैं। इन जंगलों में सागवान, खैर, तेंदू आदि बेशकीमती वृक्षों की भरमार है। यहां के जंगलों को देखकर सहज ही कहा जा सकता है कि कभी यहां सघन वन थे। सीताबाड़ी पर्यटन स्थल है। यहां वाल्मीकि जी का आश्रम है। लव-कुश मंदिर, लक्ष्मण कुण्ड आदि हैं। इन पवित्र कुण्डों में श्रद्धालुओं का तांता लगा रहता है। समय बीतने के साथ वनों की सघनता कम होती गई। आज यहां के वनोत्पाद सहरियों की माली हालात सुधारने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। नतीजतन सहरियों की आर्थिक दशा बदतर होती जा रही है।

खेत-खलिहान, पशु और वनोत्पाद के अभाव में सहरिया जनजाति चंद प्रभावी लोगों की दया पर जीने के लिए अभिशप्त है। अधिकांश सहरिया जनजाति के लोग कृषि फार्मों पर मजदूरी करते हैं। कृषि फार्मों पर काम करने के अलावा ग्रामोद्योग यथा गुड़ उद्योग में कोल्हू के बैल की तरह काम करते हैं। इनकी दयनीय स्थिति को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि इन्हें आवश्यकता के अनुरूप मजदूरी मिलती है। सहरिया जनजाति के बहुसंख्यक लोग कर्ज में डूबे हुए हैं। कर्ज अदायगी की क्षमता इन लोगों में

नहीं है। सेठ-साहूकारों द्वारा इन्हें आर्थिक रूप से पहले ही काफी कमजोर बना दिया गया है। सहरिया सेठ-साहूकारों के यहां बेगार करते हैं। उनके खेतों पर काम करते हैं। उनके पशु चराते हैं। जीवन भर समूचा परिवार काम करता है, किंतु कर्ज से मुक्त नहीं हो पाता। सहरियों की यह दयनीय स्थिति कोई कल्पना नहीं हकीकत है। हर तरह से इनका शोषण किया जाता है। इनकी निर्धनता और मजबूरी का लाभ उठाया जाता है। निरक्षरता के कारण इनमें जागरूकता नहीं है। अनेक कल्याणकारी योजनाएं इनके लिए बनी हुई हैं किंतु इन योजनाओं के बारे में इन्हें तनिक भी जानकारी नहीं है। इनके कल्याण की योजनाएं कागजों में ही सिमट कर रह जाती हैं। जरूरतमंदों तक अपेक्षित लाभ नहीं पहुंच पाता है नतीजतन इनकी स्थिति पूर्ववत ही बनी हुई है।

सहरिया जनजाति के लोग बदतर स्थिति के लिए स्वयं भी कम उत्तरदायी नहीं है। समूची आबादी रूढ़िवादिता में डूबी हुई है। सहरिया परिवारों में अधिकांशतः महिलाएं ही काम पर जाती हैं। पुरुष महिलाओं की आय पर निर्भर हैं। सहरिया परिवारों में यदि घर में खाने-पीने के लिए आटा दाल है तो ये काम पर नहीं जाएंगे। घर में खाने के दाने रहने तक घर में ही रहना पंसद करेंगे। इसके बाद ही काम की तलाश में घर से बाहर निकलेंगे। दिन-भर भूखे प्यासे काम करेंगे। तब कहीं जाकर खाने की व्यवस्था करेंगे। इसमें भी पुरुष मदिरा सेवन कर लेते हैं। जैसे-तैसे महिलाएं ही रोटी की व्यवस्था कर पाती हैं। रोटी के अभाव में ये लोग गुड़ का पानी पीकर रात बिता देते हैं।

हाल ही में राजस्थान में पंचायत चुनाव (जनवरी-फरवरी 1995) सम्पन्न हुए हैं। अनेक वर्षों बाद सहरिया बहुल क्षेत्रों में आरक्षण के कारण सरपंच का पद सहरियों के हाथों में आया है। क्या ऐसी स्थिति में निरक्षर और दयनीय जीवन जीने वाले सहरिया स्वयं को शोषण से मुक्त कर सकेंगे। सरकार को भी इनकी दशा सुधारने के लिए प्रभावोत्पादक कदम उठाने की सख्त आवश्यकता है। सर्वप्रथम तो सहरियों को साक्षर करना होगा। इसके बाद इन्हें रूढ़िवादिता के शिंकजे से बाहर निकालना होगा। सरकार द्वारा सहरियों के कल्याण के लिए जो योजनाएं बनी हुई हैं उनकी सहरियों तक पहुंच सुनिश्चित की जानी चाहिए। संबल के अभाव में सहरिया स्वयं को संभाल नहीं पाएंगे। इन्हें आर्थिक सहारे की बहुत जरूरत है।

सहरिया जनजाति जैसा दयनीय जीवन आज भी देश के अनेक हिस्सों में विभिन्न जाति के लोग जी रहे हैं। उनकी बदतर स्थिति में सुधार किये बिना भारत की प्रगति कोई मायने नहीं रखती है।

प्राध्यापक,
आर्थिक प्रशासन तथा वित्तीय प्रबंध विभाग,
"शांति-दीप" जटवाड़ा मानटाऊन,
सवाई माधोपुर-322001 (राज.)

(पृष्ठ 19 का शेष)

गांवों का स्वरूप....

नए मकानों के निर्माण के लिए 12000 रुपये तक की सहायता दी जाती है।

सरकार का मानना है कि ग्रामीण आवास और शहरी आवास में गुणात्मक अन्तर है। ग्रामों में आवास निर्माण में स्थानीय सामग्री, डिजाइन और प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। तिरुअनन्तपुरम के लारी वेकर सहित अनेक वास्तुकारों का भी मत है कि स्थानीय सामग्री और डिजाइन से आरामदेह और मजबूत मकान कम खर्च में बनाये जा सकते हैं। इस दिशा में उपलब्ध जानकारी को एकत्र करने और स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार उसका इस्तेमाल करने की जरूरत है। इसमें स्वयंसेवी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

22, मैत्री अपार्टमेंट्स,
ए/3 पश्चिम बिहार,
नई दिल्ली।

बेटी-योजना

✍डा० रजनी कान्त पाण्डेय

महिलाओं की समाज में बढ़ती भागीदारी को मद्देनजर रखते हुए हरियाणा सरकार द्वारा "अपनी बेटी अपना धन" नामक योजना आरम्भ की गई है। गांधी जी की 125वीं जयंती के मौके पर शुरू की गई यह योजना भारत में अपने ढंग की पहली योजना है।

योजना के मुख्य उद्देश्य

योजना को शुरू करने का मुख्य कारण हरियाणा में स्त्री-पुरुष अनुपात का भयावह असंतुलन है। आर्थिक संपन्नता के दायरे में देश भर में दूसरे स्थान पर दर्ज हरियाणा में 1000 पुरुषों की तुलना में औरतों की संख्या मात्रा 865 है, जो कि देश में सबसे कम है। दूसरी ओर हरियाणवी समाज के माथे पर मादा भ्रूण हत्याओं का कलंक भी सबसे ज्यादा लगा है। सामाजिक रूढ़ियों में बंधे आम हरियाणवी लोग बेटियों का नाम न तो राशन कार्ड में लिखवाते हैं और न ही मतदाता सूची में। अतएव हरियाणा सरकार ने लड़की और औरत को समानता व विकास के अवसर मुहैया कराने के उद्देश्य से "अपनी बेटी अपना धन" योजना शुरू की है।

अपनी बेटी अपना धन

220 करोड़ रुपये की "अपनी बेटी अपना धन" योजना में न सिर्फ बेटी को बल्कि बेटी को जन्म देने वाली मां को भी सम्मानित करने का प्रावधान है। योजना से जुड़े प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं–

- प्रत्येक परिवार के पहले तीन बच्चों में जन्मी बेटी के पैदा होने पर 3000 रुपये की राशि बतौर सरकारी मदद दी जाएगी। इन 3000 रुपयों में से बच्ची की मां को 500 रुपये पंजीरी (पौष्टिक खाद्य सामग्री) हेतु आंगनबाड़ी केन्द्र से मिलेंगे।
- सरकार शेष 2500 रुपये की राशि इंदिरा विकास पत्र या किसी अन्य बचत योजना पर खर्च करेगी। यह राशि उसके जन्म के पहले तीन महीनों के भीतर सरकार उसके नाम कर देगी और 18 वर्ष के बाद वह लड़की इस राशि को पाने की हकदार होगी।
- 18 वर्ष बाद यह राशि 25,000 रुपये हो जाएगी। इस राशि को लड़की अपनी पढ़ाई रोजगार या शादी पर खर्च कर सकेगी।
- यह योजना सिर्फ अनुसूचित जाति व गरीबी रेखा के नीचे बसर कर रहे परिवारों के लिए है। अनुसूचित जाति के प्रथम व द्वितीय श्रेणी के सरकारी कर्मचारी इस योजना से बाहर रखे गये हैं।
- प्रतिवर्ष लगभग 73,000 परिवार इस योजना से लाभान्वित होंगें।

समीक्षा

हरियाणा सरकार ने लड़कियों को सामाजिक सम्मान दिलवाने के लिए मुफ्त शिक्षा का बंदोबस्त भी कर रखा है। यह देश का कमोबेश ऐसा पहला राज्य है जहां लड़कियों को पहली कक्षा से लेकर बी. ए. तक पूरी शिक्षा मुफ्त दी जाती है। इसी के परिणामस्वरूप महिला साक्षरता का वर्तमान औसत 40.47 प्रतिशत हो गया है, जबकि 1971 में मात्र 14.9 प्रतिशत था। परन्तु गांवों की महिलाएं आज भी अनपढ़ हैं। राज्य में सबसे अधिक मादा भ्रूण हत्याओं का कारण भी महिला निरक्षरता ही है। मादा भ्रूण हत्या के अतिरिक्त "बाल मृत्यु दर" में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की संख्या ज्यादा है। देश में 1000 पुरुष की तुलना में सबसे कम औरतों व सबसे ज्यादा मादा भ्रूण हत्याओं वाले इस राज्य में "अपनी बेटी अपना धन" योजना से सामाजिक सुधार की एक उम्मीद जगती है कि अब यहां लड़कियों के जन्म को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जाएगा।

इस योजना से हरियाणा के समाज में न सिर्फ लड़कियों को सामाजिक स्वीकृति मिलेगी, वरन् उनका आने वाला कल भी उज्ज्वल व सुरक्षित होगा। इससे देश के अन्य राज्यों को भी प्रेरणा मिलेगी कि वे महिलाओं की सामाजिक जागरूकता व विकास कार्यों को प्राथमिकता दें।

113 नया मम्फोर्डगंज,
इलाहाबाद-211002

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/95
पूर्व भुगतान के बिना डी. पी. एस. ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

R.N./708/57
P & T Regd. No. D/(DL) 12057/95
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली - 110001 द्वारा प्रकाशित और आकाशदीप प्रिन्टर्स, नई दिल्ली - 110002 द्वारा मुद्रित